तप रहे कचनार

सम्पादक

मधुसूदन साहा

तप रहे कचनार

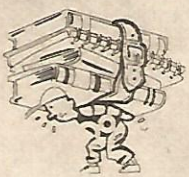

श्री प्रकाशन, दिल्ली-32

तप रहे कचनार

संपादक : मधुसूदन साहा

मूल्य : सौ रुपये / प्रथम संस्करण, 1997 / आवरण-शिल्पी : सत्यसेवक मुखर्जी / प्रकाशक : श्री प्रकाशन, 585/2-बी/1-सी, अर्जुन गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32 / मुद्रक : कोणार्क प्रिंटर्स, दिल्ली-32

TAP RAHE KACHNAR : Ed. Madhu Sudan Saha Rs. 100.00

प्राक्कथन

एक लम्बे अन्तराल के बाद नवगीत विधा की शान्त झील में इस संकलन के माध्यम से नवगीत-चेतना की कंकड़ी उछालकर गीति रचना की चिरन्तन प्रतीति को तरंगायित करने के पीछे मेरा एक निश्चित उद्देश्य है; मेरी एक चिरंतन संकल्पना है। केवल यही वह विधा है जिसमें व्यक्ति अपनी संवेदना को विभिन्न वैयक्तिक दशाओं में निष्ठापूर्वक अभिव्यक्त कर सकता है। इसकी अजस्र धारा वैदिक युग से आज तक अबाध गति से प्रवहमान है। यह मानव समाज के विलयकाल तक किसी न किसी रूप में जीवित ही नहीं, जीवन्त भी रहेगी।

सृष्टि का मूल स्वर लयात्मक है। प्रकृति का कण-कण लास्यपूर्ण एवं सौंदर्य-पूरित है। सौंदर्य-चेतना सचेतनता का प्रतीक है। संवेदना इसी सौंदर्य-चेतना से निःसृत होती है। मानव कभी संवेदनाशून्य नहीं हो सकता। इसलिए चाहे गीत की बात करें अथवा उसके 'प्रवृत्यात्मक वैशिष्ट्य' को अभिव्यक्त करने वाले 'नवगीत' की चर्चा, गीति तत्त्व की सौंदर्यपरक विशिष्टता को नकारना कदापि संभव नहीं है। इसलिए बकौल डॉ. शंभुनाथ सिंह "यह कहना अधिक सही होगा कि समकालीन हिन्दी साहित्य में कविता यदि कहीं है तो नवगीत में ही है।" क्योंकि लयात्मकता, रागप्रवणता, आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, भाषागत सुन्दरता, प्रतीकात्मक नव्यता, शिल्पगत सुष्ठुता, बिम्ब-विधान की मौलिकता आदि कई दृष्टिकोणों से नवगीत आधुनिक काव्यधारा में अपनी अलग पहचान रखता है। नवगीत के प्रबल पक्षधर डॉ. शंभुनाथ सिंह इसे पूर्णतः बिम्बधर्मी काव्य मानते हैं। उनका मानना है कि नवगीत में "या तो ऐसे प्रातिभ बिम्बों का प्रयोग हुआ है जो पश्यन्ती वाक के स्तर से अभिव्यक्त होने के कारण सर्वथा नवीन, अछूते और अकल्पनीय हैं या उसमें अधिकतर यथार्थ जगत् के अनुद्घाटित आयामों के अप्रयुक्त बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं, जैसे वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र के जीवन बिम्ब, महानगरों के त्रासद और नाटकीय बिम्ब, ठेठ ग्रामीण अंचलों एवं वन-पर्वतों के आदिम तथा मिथकीय बिम्ब, भोगी हुई जीवनानुभूतियों के संश्लिष्ट बिम्ब, उस चेतन के अंधकार में निहित वासनाओं के छद्म रूपों के खंडित एवं प्रतीकात्मक बिम्ब तथा

राजनीतिक / सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के सांकेतिक और छन्दात्मक बिम्ब। इन बिम्बों की पहचान ही नवगीत की सही पहचान है। बिम्बों की इसी मौलिकता के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारत के समस्त काव्य-प्रेमियों को नवगीत ने अपनी ओर आकृष्ट किया और इस काव्यधारा से एक से एक समर्थ काव्यशिल्पी इस काफिले में शामिल होते चले गये।

'नवगीत' लेखन कब से शुरू हुआ या पहली बार इस शब्द का किसने मौखिक अथवा लिखित रूप में प्रयोग किया या नवगीत आन्दोलन का अगुआ कौन है आदि कई ऐसे सवाल हैं जिनके घेरे में घिरकर नवगीत जैसी समर्थ एवं सक्षम काव्य विधा असमय ही विवादों के कठघरे में खड़ी हो गई। इस विधा को प्रतिष्ठा प्रदान करने में जो लोग लगे थे उनमें से अधिकांश बेकार के पचड़ों में पड़ने के बजाय गज़लों की महफिल में जा बैठे। कालक्रम से यह धारा क्षीण होती गई और इसकी बगल में हिन्दी गज़ल की एक नयी काव्यधारा इन्हीं गीतकारों के हाथों संवरने लगी। लेकिन दुर्दिनों में साथ छोड़ने वालों में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं तो अपनी प्रतिबद्धता से कभी मुंह नहीं मोड़ते। ऐसे ही कुछ निष्ठावान नवगीतकारों ने नवगीत का कभी साथ नहीं छोड़ा। उनके नवगीत हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभार छपते रहे, अपने जीवित होने का एहसास दिलाते रहे। गज़ल-संकलनों की भीड़ में एकाध नवगीत-संकलन भी देखने में आया किन्तु नवगीत के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का एक ऐसा कुहराच्छन्न वातावरण बन गया कि नवगीत केवल शोधार्थियों के लिए खोज की वस्तु भर रह गया।

भाव, भाषा, शिल्प, सम्प्रेषण, अभिव्यंजना, सौंदर्य-चेतना, रसनिष्पत्ति आदि समस्त काव्यगत विशेषताओं से संश्लिष्ट यह काव्य विधा सम्पूर्ण रूप से भारतीयता की परिचायक है। इसमें गांव की प्रच्छन्न प्रकृति के नयनाभिराम बिम्ब भी हैं और नगर की प्रदूषित प्रवृत्ति के मानस प्रतिबिम्ब भी, इसमें भारत की सांस्कृतिक गरिमा का गायन भी है और इंडिया की सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों का रूपायन भी। यह लोकमानस की अभिव्यक्ति, भारतीय संस्कृति से सम्पृक्ति, प्राचीन परम्परा तथा आधुनिक जनचेतना से जड़ित एक सर्वांग भारतीय काव्यधारा है जिसे स्वतंत्र भारत के सैकड़ों समर्थ हस्ताक्षरों ने अपनी सम्पूर्ण अन्तःशक्ति से सजाया-संवारा है। निराला से लेकर निर्मल मिलिंद तक की यह सूची बड़ी लम्बी है जिसे यहां गिनाना कतई संभव नहीं है; फिर भी कुछ ऐसे नाम हैं जिनके उल्लेख के बिना इसकी पक्षधरता का सही परिदृश्य उजागर नहीं हो पायेगा।

यह सर्वमान्य है कि विभिन्न काव्यधाराओं के प्रवर्तक प्रथितयशा कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के गीतों में सर्वप्रथम गीतलेखन के बदले हुए तेवर दिखलाई पड़े। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का मानना है कि 'गीतिका' के प्रकाशन के साथ ही नवगीत के उद्‌भव का पूर्वाभास होने लगा था। आगे चलकर 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुंज' और 'सांध्यकाकली' के शताधिक गीतों में वे सभी प्रवृत्तियां और शिल्प-प्रविधियां उभरकर आयीं जिनका चरम विकास परवर्ती नवगीतों में परिलक्षित हुआ। राजेन्द्रप्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, चन्द्रदेव सिंह आदि नवगीतकारों ने नये तेवर के इन गीतों

को संकलित कर नवगीत का पथ प्रशस्त किया जिन पर नवगीतकारों की एक पूरी जमात तीन दशकों तक अबाध गति से चलती रही। उसी जमात के प्रतिष्ठित एवं चर्चित हस्ताक्षरों में डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. शान्ति सुमन, नईम, सोम ठाकुर, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', देवेन्द्र कुमार, उमाकान्त मालवीय, रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण', ठाकुरप्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, छविनाथ मिश्र, शलभ श्रीराम सिंह, नारायणलाल परमार, रमेश रंजक, कुंवर बेचैन, अनूप 'अशेष', राम सेंगर, रमाशंकर तिवारी, कुमार रवीन्द्र, श्रीकृष्ण तिवारी, माहेश्वर तिवारी, राजेन्द्र गौतम, जहीर कुरेशी, बुद्धिनाथ मिश्र, मधुसूदन साहा, घनश्याम अस्थाना, श्याम 'निर्मम', हरीश निगम, मधुर कमल, सुरेश श्रीवास्तव, विनोद निगम, डॉ. इसाक अश्क, महेश उपाध्याय, मयंक श्रीवास्तव, यश मालवीय, निर्मल मिलिंद आदि कुछ नाम हैं जिन्होंने नवगीत को गरिमामंडित करने में सदैव अपना सक्रिय योगदान दिया है। इन्हीं में से नवगीत के प्रति प्रतिबद्ध तीन हस्ताक्षरों के तीस-तीस नवगीतों का संकलन 'तप रहे कचनार' आपको सौंपते हुए हर्ष एवं संकोच दोनों का एक साथ एहसास हो रहा है। हर्ष इसलिए कि इसके जरिए मैंने सन्नाटा तोड़ने का प्रयास किया है और संकोच इसलिए कि आप इसे न जाने किस प्रकार स्वीकारेंगे।

अन्त में मैं नवगीतों के प्रकाशन में ऐतिहासिक कार्य करने वाले उस समर्पित व्यक्ति को हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूं जिनकी कृपा के बिना यह संकलन नहीं निकल पाता।

— मधुसूदन साहा

नवगीत-क्रम

• डॉ० शान्ति सुमन

सूर्य का उदय	13
गीत गाये देहरी	14
सुबह-सुबह दर्पण ने	15
तुम एक सघन पेड़ हो	16
धीरे पांव धरो	17
हरे-भरे खेतों के गांव	19
फागुन के दिन	20
सूरज के साथ हम बहे	21
अबके फिर गुलमुहर दहके	22
गंगा की लहर फिर गिनें	22
तुमको चाहा कितना मैंने	23
एक उजली भोर	24
बौर गंध पहन पवन डोले	25
मन सबसे पहले तुमको टेरे	26
बंदली का हिरना	27
बरखा से झहर जाएं हम-तुम	28
लौटता है नहीं पाखी	29
कांटे भी प्रार्थना बुनते	30
साथ मेरे चल रही है	31
सिन्दूरी सांझ	32
शरद ऋतु का आकाश	33
इसी तट पर	34

बात-बात पर हँसना 35
कोई परछाईं 36
ऋतु का प्यार 37
सर्दियों के दिन 38
अनगाये गीत 39
पैर की छाप 40
फूले हैं यहां पर बबूल 41
सूर्य को प्रणाम करें 42

• निर्मल मिलिंद

आखर विश्वास के 49
भीग गया फुहियों से 50
मुदैया मौसम 51
चितकबरी सांझ 52
पसर रही मदहोशी 54
शबनम नहायी सुबह 55
हंस उड़े जैसे सिन्दूर के 56
इतने कठिन हुए दिन 57
धूप की गिलहरी 58
शब्दों के मोगरे पिरोना 59
चंदनी चेहरे 60
पांव फिर बहके 61
आप क्या जानें 62
अनुराग के श्लोक 63
बालू पर रेखाएं खींचें 64
आप बहुत धीरे से बोलिए 65
गीत हमारे पहरेदार हुए 66
चारों ओर दरिंदे 67
हिमालय का पिघलना 68
क्या पागलपन है ! 69
जहरीला परिवेश 71
मुश्किल अंधेरे को फतह करना 72
बनकर खासमखास 73
डाकिनी यह सल्तनत मनहूस 74
गिरें क्यों हम ही उलटे-औंधे 75
सूदिया महाजन 76

मिलते अब छलिया प्रणाम 77
शेष कुशल है 78
चुभते सन्नाटे 79
विश्वास का दिया 80

• डॉ० मधुसूदन साहा

इक कली कचनार हो तुम 85
फागुनी अतीत 86
उमरिया की रोटी 87
कब तलक तुम 88
किरणों की सोन नदी 89
मौसम मनुहार के 90
सीढ़ी पर बैठी सांझ 92
दुपहर की धूप 93
परदेशी दिन 94
ऋषियों का देश 95
धूप लड़ती छांव से 96
संगाती गांव के 97
शहरी सौगात 98
ढह रहे ऊंचे कंगूरे 99
आदमी हो गया है मंडी 100
इस शहर को 101
कहीं जा रहे हैं 102
मैं शहर में आ गया दर्पण लिये 103
रास्ते सारे पड़े हैं जाम 104
मेरे साथ चल 106
हमको भी आता है 107
नींद नहीं आंखों में आयी 108
मैं भी साथ चलूंगा 109
मेरे गीतों को 110
जिस दिन से तुम हुए हिमालय 111
कब तक सहें ? 112
मौके पर डंसते हैं 113
शब्द अगर तन जाये 114
चुभते हैं पिन 115
आज का आदमी 116

डॉ० शान्ति सुमन

जन्म-तिथि : 15 सितम्बर, 1942

जन्म-स्थान : ग्राम-कासीमपुर, जिला-सहरसा (बिहार)

शिक्षा : बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से वर्ष 1965 में एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण।
वर्ष 1971 में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त।

आजीविका : वर्ष 1966 के 30 सितम्बर से 'महंत दर्शनदास महिला महाविद्यालय', मुजफ्फरपुर में प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत। सम्प्रति उसी कॉलेज के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर के पद पर।

प्रकाशित कृतियां : ओ प्रतीक्षित, परछाईं टूटती (नवगीत संग्रह), सुलगते पसीने, पसीने के रिश्ते (जनवादी गीतों का सह संकलन), मौसम हुआ कबीर (जनवादी गीत संग्रह), मेघ इन्द्रनील (मैथिली गीतों का संग्रह), जल झुका हिरण (उपन्यास), 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' (शोध-प्रबन्ध)

सम्पादन : 'सर्जना', 'अन्यथा', 'भारतीय साहित्य', 'कन्टम्परेरी इंडियन लिटरेचर' तथा 'बीज' का सह सम्पादन।

विशेष : महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित तथा देश के अधिकांश आकाशवाणी केन्द्रों और दूरदर्शन से रचनाएं प्रसारित।

सम्पर्क-सूत्र : जागेश्वर, मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर-842002

स्व उक्ति

बचपन में गीत और कविता को पढ़ते हुए सहज ही समझ में आ गया था कि गीत-रचना कविता-लेखन की तरह आसान नहीं है और प्रत्येक कवि गीतकार नहीं हो सकता। मैंने नवगीत को गीत की विकास-यात्रा की अनिवार्य परिणति के रूप में ही स्वीकार किया है।

मैं मानती हूं कि किसी भी कला-संस्कृति का मूलाधार अर्थ-व्यवस्था होती है। मेरे गीत भी इससे अछूते नहीं हैं। तब, जब मैंने समाज को भलीभांति समझा नहीं था, उसके प्रति एक भावुक दृष्टि थी और जब मैंने समाज-व्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों को देखा, सामाजिक यथार्थ के आमने-सामने हुई और तपते हुए कचनारों की पांत में मेरे जीवन के अच्छे-भले दिन भी तपने ही नहीं, झुलसने भी लगे, यहीं से मेरे गीतों की विभाजक रेखा साफ दिखाई देने लगी। मेरी रचनाओं में भी समाज-व्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों का कालानुसार प्रक्षेपण हुआ। वैचारिक अन्तर्वस्तु में आने वाले परिवर्तन के समानान्तर मेरे गीतों में भी बदलाव आये।

मैं मानती हूं कि जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। लौकिक जीवन में भी ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं है जिसमें गीत की सहयोगी भूमिका नहीं हो। यह श्रम-शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रम-शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है।

प्रत्येक रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। नवगीतकारों को ये संघर्ष कम नहीं झेलने पड़े। मुझको तो मेरे इन संघर्षों ने ही रचा है क्योंकि तब मेरे दिन बड़े कठिन थे। मुझको पढ़ना भी था—कैरियर की चिन्ता थी, परिवार देखना था और गीत की रचना भी करनी थी। मुझको बहुत कम सुविधाएं प्राप्त थीं और इन्हीं में सब कुछ करना था। तब नवगीतकारों के दायित्व भी बड़े थे। गीत को नयी दृष्टि से देखना, सोचना और लिखना सचमुच गुरुतर कार्य था। नवगीतकारों ने सबसे अधिक ध्यान अछूते बिम्बों को जुटाने में दिया। उपमा, रूपक की ताजगी और भाषा की सादगी के कारण भी नवगीत और पूर्ववर्ती गीतों से अलग दीखते थे। नवगीत के भाषागत प्रयोग जितने पैने हैं उतने ही सम्मोहक भी। यही कारण है कि नवगीत ने छायावाद से भी अधिक लोकप्रियता अर्जित की क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक चमकीले, ताजे और मोहक बिम्बों से भरी हुई है। इसके बावजूद छायावाद की तरह नवगीत आन्दोलन को बढ़ावा क्यों नहीं मिला, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

इस सन्दर्भ में मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि नवगीत का उसके अपने कुछ दावेदारों से ही अहित हुआ है। जब विधा की पहचान पकड़कर उसके विकास का इतिहास लिखा जाना चाहिए था, तब उसके उत्स को लेकर ही विवाद होता रहा। छायावाद के कवियों ने स्वयं अपने ऊपर और अपने समान-धर्मा कवियों के ऊपर जितना लिखा, उस विधा को समझने के लिए यह पर्याप्त है, पर नवगीत में यह काम नहीं हुआ। नवगीतकार एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में ही लगे रहे। उन्होंने विधा नहीं बल्कि अपने विकास के बारे में अधिक सोचा। अन्यथा क्या कारण था कि इतनी सशक्त और जीवन्त विधा का असमय ही इतना बिखराव हो जाता? मेरा यह मानना है कि जीवन कितना भी कठिन हो जाये, मगर कोमलता का पूरा निर्वासन नहीं होता। राग को जीवन में आंजना ही पड़ता है। यदि इतने भर के लिए भी नवगीत याद किया जाये तो पूरा-का-पूरा नवगीत बच जाएगा और अलिखित होकर भी उसका इतिहास अपना दाय मांगेगा।

वस्तुत: अद्यतन काव्य-दिशाओं से साक्षात्कार कराने के लिए नवगीत की बड़ी भूमिका रही है। इस दृष्टि से इसका सर्वेक्षण, विश्लेषण और प्रतिनिधि हस्ताक्षरों के संदर्भ आज भी दिये जायें तो छायावाद के बाद नवगीत एक बड़ी काव्य-विधा के रूप में दीखेगा। कई नवगीतकारों की रचनाधर्मिता और वैशिष्ट्य आज भी लोकार्पित नहीं है। कई नवगीतकारों के संग्रह समय पर नहीं आये। इसलिए भी उसकी निन्तरता को बाधा पहुंची। उसके साथ ही कुछ नवगीतकारों ने नवगीत की ओर से ग़ज़ल की ओर पलायन किया। नवगीत-धारा इससे भी काफी हद तक बाधित हुई है।

एक बात और भी है जो तत्कालीन समय का सच और नवगीत की समसामयिकता एवं प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। वह यह कि सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में कवि-सम्मेलनों के मंच पर नवगीत अधिक लोकप्रिय रहा। यह बात अलग है कि लोकप्रिय होना और समय के साथ होना अलग-अलग बातें भी हो सकती हैं, पर नवगीत अपनी अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता और धार के कारण, वस्तु के साथ शिल्प के मंजाव के कारण जनता के मन में रस-बस गया था। नवगीत के पहले ऐसा जन-समर्थन प्रगतिवाद को छोड़कर किसी कविता को नहीं मिला क्योंकि नवगीत में जनता के मन और मस्तिष्क दोनों को झकझोरने के पर्याप्त कारण हैं। विश्वास है 'तप रहे कचनार' में संकलित नवगीतों को पाठकों का वही प्यार मिलेगा।

शान्ति सुमन

सूर्य का उदय

जगा हुआ ज्योति की प्रतीक्षा में घर,
तुम आये तभी हुआ सूर्य का उदय।

तुम्हारी हंसी पहन कर हुए
दुहरे घर - आंगन,
चिड़ियों की पांखों पर अंकित
तितलियों का मन,

खिड़कियाँ - दलान हुए धूप के नगर,
पलकें जो खुलीं, हुई हर्ष की विजय।

चंदन में सनी हुई गमकी
गेरू की लिपियां,
दीवारों पर सजी हुई
ज्यों दीपावलियां,

आशीषों में ढले अक्षत - से अक्षर,
झरती हैं बांहों के छन्दों से लय।

पुरखों के पुण्य फले
जागा मां का सुहाग,
फूटे छः दांतों वाली—
मुस्कानों के विहाग,

उजली छुअन जैसे सुखों के लगे हों पर,
अपनी धरती पर पहले न था निलय।

उत्सव - सी रचती हैं
धूप - हवा मिल के,
सब अभाव हुए जाते
अब बीते कल के,

तुम अपूर्व, अक्षय वरदान हो अमर,
तुमसे हरे हुए हम हर हाल में तनय।

गीत गाय देहरी

कोमल पांव धरो,
फूटे चन्दन की गंध
गीत गाये देहरी।

कई जनम के पुण्य
आज फूले पुरखों के,
अंगड़ाई ले जागे हैं
सपने बरखों के;

अरुणित नयन वरो,
ऋचा - स्वर गूंजें मन्द
द्वार हिरना ठहरी।

सौ-सौ कमल-ताल में
जैसे पंखुड़ियां खोले,
लहठी वाले हाथ ये जब
परिचय - प्रणाम घोले,

मंत्र - मुग्ध करो,
बोये धूप - हवा मकरंद
फुनगियों से उतरी।

जीवन भर की पूंजी ये
क्षण सुख के पहने,
रचे स्नेह सुकुमार
सुहागन तेरे गहने,

सीपो - सपन भरो,
मुखर घर-आंगन छंद
जैसे वर्षा झहरी।

सुबह-सुबह दर्पण ने

जाने कितनी बार जगाया
सुबह - सुवह दर्पण ने।

महुवा हवा नींद भर लाती,
मां की थपकी-सी मन भाती।
उजले धूप - गीत की वंशी
छेड़ी तान किरण ने।

जाने कितनी बार हंसाया
सुबह - सुबह दर्पण ने।

गिनती करती हुई अंगुलियां,
बातचीत में फंसी मछलियां,
होते भोर बुलावा भेजा
कलियों को कानन ने।

'मिस' की तरह आज फिर डांटा
सुबह - सुबह दर्पण ने।

मां की बांह पकड़कर सोना,
सपनों में भी जादू - टोना,
बाबूजी को कहा - मनाया
अकसर भोलेपन ने।

गोल किया मुंह टाफी पर भी
सुबह - सुबह दर्पण ने।

तुम एक सघन पेड़ हो

पितरों के पुन कोंपल - से फूटे—
छोटे शहर के अपने इस घर में।

इन्तजार धूपिया हवाओं में
खिड़कियों की जाली में चित्र लिखे,
छोटी चिड़िया की खुलती पांखों से
आकाश के आंगन में अल्पना दिखे,

नरम रुई-सी हथेली सहलाएं
टेर उत्सव के सरस स्वर में।

आगे बढ़ते पथ के पांवों से
उठे हुए हाथों से हवाओं में,
नये पत्तों की लहरों में बजती हो
कब से रखी हुई वंशी गांवों में,

सुबह के धूप - गीत सपनाये
तुम एक सघन पेड़ हो मेरे घर में।

गीतों में जलतरंग बजता है
मिट्टी के घड़ों में जैसे पानी,
कौड़ियां रखते जैसे गूंजती
चूड़ियां हों सुआपंख - धानी,

भावी इतिहास सिर उठाये—
जगते हैं मेड़ अधराती गजर में।

धीरे पांव धरो

धीरे पांव धरो !
आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र-सदृश उचरो !

तुम अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान,
तुम भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान,

पोर-पोर आंगन के
लाल महावर-सी निखरो।
धीरे पांव धरो!

तेरी हंसी पहनकर गाये
फूलों की टहनी,
तुम अन्तर की भाषा में
सपनों के सूत बनी,

आंचल भरकर दूब - धान
सिन्दूरी नमन करो।
धीरे पांव धरो!

जीवन की अल्पना रचेंगे
सुख के मीन-मयूर,
लहठीवाले हाथ तुम्हारे
माथे का सिन्दूर,

पितरों के गौरी - गणेश को
पूजो, वरन करो!
धीरे पांव धरो!

हरे-भरे खेतों के गांव

बार-बार हमको बुलाती है,
फसलों की गंध-गुंथी छांव,
चलो सुनयना, हम दोनों चलें
हरे - भरे खेतों के गांव।

फसलों के बीच तुम्हारा ही चेहरा
ममता भरी तेरी आंखें,
कोमल बांहें ऐसे खुले जैसे—
प्यार भरी चिड़ियों की पांखें,
मुहरे लगी तेरी आंखों की
कढ़ती जैसे अरिपन - ठांव।

अपनी बेटी-सी कोमल हरियाली
सामने किलकती खड़ी,
बैठ घूम आती हवाओं के यान पर
सपने से भी लगती बड़ी,
आकाश - सी नीली पगड़ी में
बाबू संभाले हुए दांव।

अनगये लोक की बातें न जानें
यह जिनगी लगती भली,
तेरा घर-मेरा घर अपना घर गूंजे
रचती है माटी कजली,
दुखों के धोये उत्सव उजाले
लछमी बसे तेरे पांव।

फागुन के दिन

अलसाने लगे फागुन के दिन,
फागुन में।

धूप-छंद रचकर सिरहाने
रात लगी मंजीर बजाने
महुआने लगे पातों के तन,
फागुन में।

अंग-अंग रससिक्त कथाएं
मोरपंख-सी खुली हवाएं
बतियाने लगे हैं भर-भर दिन,
फागुन में।

लगा गंध की नदी नहाके
आंख खुली पाजेब बजा के
सुलझाने लगे जूड़े-सा मन,
फागुन में।

झरने लगे गंध के झरने
भींगी देह आंख-मन करने
दुहराने लगे सब पिछले क्षण,
फागुन में।

ऐंपन लगी गमकती सुबहें
अमलतास की कथा क्या कहें
सगुनाने लगे शर-बिंधे सपन,
फागन में।

सूरज के साथ हम बहे

खिसकने लगा अब किनारा
छूटने लगा है जहाज ।

अभी-अभी जो जैसे थे
धीरे से अनहुए हुए,
बादल की नदी लांघकर
सूरज के साथ हम बहे,

हिलते हाथों का सहारा
महंगा मंगे का ताज ।

मुस्कानों का एक अदद मौसम
सामने पलासों-सा दहका,
बीच दुपहरिया में जैसे
धूपों से सिंकता मन महका,

पिछली यादों में दुबारा
उधड़े कमीजों के काज ।

यह कैसा विदा का सन्नाटा
कोसों तक सूना मन कांपा,
उंगलियों-फंसा छोटा-सा कागज
हवा ने उदासी को छापा ।

कितना अमोर जी हमारा
सपनों पर है जिसको नाज ।

अबके फिर गुलमुहर दहके

अबके फिर गुलमुहर दहके
गाछों भर आग से लहके
किसी संझियाये पहर में।

प्रतीक्षा-धुली दो आंखें
लाल-उजली मेघ - पांखें
इस उन्मन दीखते शहर में।

बनते ही बांहों के घेरे
सुरभि के संवाद से घनेरे
कजलायी आंख की लहर में।

उतरेगा किसी हरी डार-सा
दिन होगा पेड़ हरसिंगार का
सूर्य-विम्ब पास की नहर में।

गंगा की लहर फिर गिनें

एक साथ
गंगा की लहर फिर गिनें।

सीढ़ियों पर बैठ धूपबाती जलाएं
पानी पर दीप की कतारें सजाएं

मदिर-ध्वनि
हाथों में जल भर सुनें।

डाली में बहते चम्पे - से मन को
बांधे उदास नावों में क्षण को

चाहों के
सूत समय को पकड़ बुनें।

उंगली में भरें रोशनी की लकीरें
आओ, अंजुरी से जल-चम्पा चीरें

हरे-भरे
दिन को हम उमर भर गनें।

तुमको चाहा कितना मैंने

तुमको चाहा कितना-कितना मैंने अपनी चाह में,
सरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में।

रुकता नहीं प्यार, प्यार यह
नदी, झील पर्वत - सा
मीठा-मीठा लगे रात - दिन
शहद - घुले शरबत - सा,

लाज का गहना पहने तेरी
आंखें बसी निगाह में।

इन हाथों से रची रोटियाँ
प्यारी पकवानों - सी
लहू उगाती क्षण-क्षण मुझ में
ममता वरदानों - सी

धूप-हवा - पानी इस घर के
घूमे भली सलाह में।

अबके काट रहा जब मैं खुद
अपने हाथों फसलें,
परस तुम्हारे हाथों का भी
कहता मिलकर हंस लें,

पीला फूल कनेर एक खिलता
है तो दिन - माह में।

बाजूबंद नहीं है तो क्या
मुक्त हवा तो है,
देने को अपने हिस्से में
रक्तजवा तो है,

साथ-साथ जीते-मरते हैं
रहते इसी उछाह में।

एक उजली ओर

बांध तो लेंगे
तुम्हारे इन्द्रधनुषी छोर।

देर तक झुकी सुरभित छांह
तुहिन की गंध - मादित बांह

तान लेंगे नभ
अलस-फेनिल किरन की डोर।

आंख की दहलीज जलते गीतिमा के दीप
मंजरित मोती पहनते भावना के सीप

टांकते हैं मन
सुगंधों के कनेरी कोर।

यतन से कितने कभी मन के कमल खिलते
कुहासों भरते, कभी धूप में जलते

मानते अब भी
उगेगी एक उजली भोर।

बौर गंध पहन पवन डोले

बौर गंध पहन पवन
घर आंगन डोले।

फूल की कनखियों पर
हामी भर टहनी,
खोल गयी क्षण में ही
सारी अनकहनी,

रूप-नखत लिये गगन
झांक रहा हौले।

घूंघट के बीच हंसे
कोहबर के दीप,
देहरी पर रखी लाज—
टह-टह दो सीप

छाये घन सान्द्र सघन
पंख नये खोले।

मौलायी मौलश्री
दुख रहा उजाला,
चुभती पड़ोस की
चांदी की माला,

स्नेह सने नीलनयन
सहज रंग घोले।

मन सबसे पहले तुमको टेरे

एक नीला सन्नाटा जब घेरे,
मन सबसे पहले तुमको टेरे।

अपना ही एकांत लगता बेअसर
गंध बर्फ-सी जम जाती है देह भर

बीनों पर जब झूमे संपेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे।

स्पर्शों की नदी तैर आयी हवा
लौट रही है तट पर लहरों की जवा

बजती वंशी सांझ - सवेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे।

आंचल जैसे लहरते रेशम के
धूप-चांदनी ठहर गयी थम के

जब भी नभ हरी घास को हेरे,
मन सबसे पहले तुमको टेरे।

बदली का हिरना

मन भटका जाने
तब से कहां-कहां,
आंखों को मूंद गया
बदली का हिरना।

तुलसी-चौरा और आंगन-चौबारे
बांध दिये बिजली ने उजले कगारे
चुप-चुप देख रहा मेघों का घिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना।

छत की दीवारों पर गहराई काई
गौरैया बांट रही दिन की कमाई

सूनापन टांक रहा लहरों का फिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना।

पुरवा लगा गयी गंध के निशान
आपस में उलझ गये दोतरफा बान
मन को उलीच रहा नावों का तिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना।

आज ऋतुओं में हुई कुछ अनबन
तन फागुन-फागुन-सा मन जैसे सावन
सुधियों में छहर रहा सपनों का झरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना।

बरखा से झहर जाएं हम-तुम

मन का मधु किंशुक
जले नहीं मीत आ!
बरखा से झहर जाएं हम-तुम।

पुरवा के झेले हैं
कितने ही ताने,
गमके हैं रात-रात
मन के सिवाने,

वसंत के सुशान्त क्षण
तपे नहीं मीत आ!
धूपों से ठहर जाएं हम-तुम।

इन्द्रधनु लहरे या
गुलमोहर फूले,
अपना स्वर-सम्मोहन
पात-पात झूले,

कसे हुए मृदंग से
बजें नहीं मीत आ।
पुलकों से संवर जाएं हम-तुम

लौटता है नहीं पाखी

लौटता है नहीं पाखी
खोजता है ठांव।

जितनी तपेगी मरुथल की रेत
दुहरेगा मौसम का छल,
महुओं के पूरे वन में वसंत भर
घिरेंगे धुओं के बादल,

होंगे सब अनहुए
यात्रा बांधेगी पांव।

सूर्योन्मुख हो भले न अंधकार
कांच की नोंक तो नहीं,
धुंध में बही जो रोशनियां
अनगायी नदी तो नहीं,

साथ रह मछली के
जीते मछुवारे गांव।

अगले-पिछले समयों के पन्ने
खुलते धानों के खेत,
इन्द्रधनु, ऋतुएं, हवाएं
उड़ाती हैं पलकों की रेत,

क्षितिज पर टंगी
दिखी हुई आंखों की छांव।

कांटे भी प्रार्थना बुनते

कांटे भी प्रार्थना बुनते
केवल फूल नहीं।

जीवन के भाग रहे क्षण ये
चुप देखें हमें - तुम्हें,
वे बांटें आभार आज
बिन मांगे मिला जिन्हें,

एक फूल के लिए यहां तो
चुभन कबूल नहीं।

संध्यामणि गूंथ जूड़े में
काढ़े रंग कुसुम के,
एक खुशी के लिए हिले-
कानों के दो - दो झुमके,

रात-रात भर चांदनियों को
मिलता कूल नहीं।

फटो हुई पन्नी के जैसे
उड़े सड़क पर टुकड़े,
अपने ही जीवन के कुछ पल
यहां-वहां हैं बिखरे,

कंचन दीये जलाकर हँसते
बाग - बबूल नहीं।

साथ मेरे चल रही है

साथ मेरे चल रही है कांपते क्षण की घटाएं
गीत का मन बन गयी है आज पश्चिम की हवाएं।

कहीं उलझे रह गये हैं
मौन के स्वर-तार मेरे,
बांसुरी भरमा गयी है
आज क्षण दो-चार मेरे,

सिहरते ये गीत मेरे क्या पता कब पहुंच पाएं,
आज अपनी खुशी से ही सपन सारे बिखर जाएं।

कहीं सिहरन बन गये हैं
नभ-नयन-मन के सितारे,
आज बासी हो गये हैं
फूल आंचल भर पसारे,

सांझ भी गहरा गयी है समय के घट छलक आएं
सिन्धु भी शरमा गया है, आज संयम मचल गाएं।

रात की निर्बन्ध छवि में
इन्द्रधनुषी छांह तेरी,
मिल गयी है उस क्षितिज पर
बांह थामे सांस मेरी,

दृष्टियों में बंध गयी है आज अंजन-सी दिशाएं,
धड़कनों में बज रहे मादल कि सौ फागुन उगाएं।

सिन्दूरी सांझ

सिन्दूरी यह सांझ, कुमकुमों-सा बादल,
तन-मन भरा गुलाल, फूटती है कोंपल।

अंगों में दहके गुलमोहर
सौ वसन्त घेरे
आंखों में फला पलाश-वन
सूरज को हेरे,

शहनाई की गूंज, थिरकता है मादल।

द्वार सजे रंगोली, मन में
हिलती डाल जुही की,
फैल गयीं आंखें अंबर की
लख सौगात मही की,

रस के हैं भरे कलश, केसर, काजल।

अपनी छवि पर रीझ रहा
अनुराग भरा दर्पण,
मंद समीर बंधे आंचल
में हरसिंगार-सा मन,

लोकगीत-सा रचा नयन का गंगाजल।

सांसों में विश्वास, आंख में
रंग भरा चूनर का,
झुका गगन, कुछ उठी धरा
अनुबंध नये घर का।

एक रात रतनार प्रतीक्षा का शतदल।

शरद ऋतु का आकाश

शरद ऋतु का यह आकाश
तुम्हारी आंखों-सा सुन्दर है।

यादों में जगने लगता है
अपना छोटा गांव,
वर्षा-बीच भींगी-भींगी-सी
धूप नहाती छांव,

पंखुड़ियों में बन्द वातास
तुम्हारी गतियों-सी मन्थर है।

जैसे परबत की छाती से
कोई झरना फूटे,
अन्तर की करुणा छौनों-सी
धरती पर यों छूटे,

फूल पर उड़े कास के हास
तुम्हारी हंसियों के आखर हैं।

गांव सिवाने के मंदिर को
छूती-सी धार नहाये,
जैसे हो कोई अग्निमित्र
मालविका को सपनाये,

धान के टूसे पर चौमास
तुम्हारी बातों-सा मनहर है।

इसी तट पर

अपरिचय का आकाश तोड़ें
एक लम्बा अंतराल जोड़ें।

कहां बहुत मिलते हैं
फुरसत के दिन,
फंसे हैं किताबों में
तितली के पिन,

पिछले छूटे सवाल कोड़ें।

धूप - हवा - बिजली-
सी लगती बातें,
'पद्मावत' की कथा-
सी जगती रातें,

दुखते सारे मिसाल छोड़ें।

अंकुर की प्यास लिये
हरियाये खेत,
कहीं दूर फेंकें ये
ओसायी रेत,

दिशाएं तरंगों की मोड़ें।

बात-बात पर हंसना

तुम्हारा बात-बात पर हंसना
कभी हाथ धर, कभी उठा ऊपर
मुंह की रंगत नयी बदलना।

देर - देर हो - हल्ला - किस्सा
नदी - पाट पाने का,
अगली वर्षा तक कमीज के
रंग नये आने का,

तुम्हारा गांठ-गांठ का खुलना
होले आंख नचा भीतर—
कच्ची मिट्टी-सा तुनुक लरजना।

गोतों में कड़वाहट मन की
डुबा निकल जाना भीड़ों से,
खुली बांह पर हाथ टिकाये
जैसे पाखी संग चीड़ों के,

नहर की लाल मछलियां तकना
बैलूनों को देख मचलना बाहर
भीतर से बहुत दहकना।

कोई परछाईं

वादी में कोई परछाईं उलझी
वनपाखी में शायद इससे ठहरा।

सूरज नाव बांध गगन की
चला शिथिल नाविक - सा
पीछा करता अधखाया दिन
घर में किसी वधिक-सा,

हरियाली में मन की उलझन सुलझी
अम्बर में बादल देता है पहरा।

गिराकर हर पाल सपन का
तेज बहती हवा रुकी,
मन में उगे ताप देहों के
संकेतों - सी डाल झुकी,

मैले अंधियारों ने पीड़ा सिरजी
गांव से कोई शहर में आकर बिखरा।

आंचल बांध रात ऊंघती
लगते तारे वनफूल,
कास के टूसे - सी गड़ती
सड़कों वाली यह धूल,

कमलिनी यहां खीजकर जड़ से मुरझी
अधराती आंखों का काजल झहरा।

ऋतु का प्यार

था तो अमलतास था ऋतु का प्यार।

बहुत अटपटा था तब
क्रीम - गंध से अलग
दूध - सा महकना
एक अलाव बहुत लाल
बहुत पतली घाटी में
फूल - सा दहकना,

चट्टानों के सिर लिखा हुआ स्वीकार।

रोकर सरल क्षणों में
मौसम की हवाओं - सा
आहिस्ता सरकना,
रोपकर मुख पर आंखों को

हिलते कास वन में
हंसुली - सा चमकना,

गीत के आखर सरीखे तप रहे कचनार।

धमनियों से फूटते
कच्चे बांसों के रंग को
सांसों में भरना,
कमलदह के गीतों में
तैरकर लगातार मन में
वंशी - सा बजना,

छोटी सड़क पर चलते गमकते आभार।

सर्दियों के दिन

चिट्ठी की पाती से खुलने लगे हैं दिन,
सर्दियां होने लगी हैं और कुछ कमसिन।

दोहे जैसी लगती सुबहें
रुबाई-सी लिखी दुपहरी,
खिली हवाएं टहनी-टहनी
खिड़की के कन्धे ठहरी,

चमक पुतलियों में फिर भरने लगे हैं दिन,
टंके कुहासे जैसे हों नीले रिबनों पर पिन।

कत्थई गेंदा पर ठहरी
खुशबू से दुहरी आंखें,
हल्के मादल संग बजी
चिड़ियों की उजली पांखें,

नदी में फिर कंचन-कलश भरने लगे हैं दिन,
रखते हैं उजले छौनों से पांवों को गिन-गिन।

लपेटकर सूतों से किरणों,
को सहेजना जेबों में,
मछली की रुनझुन बजती
पोखर के पाजेबों में,

हाथ भर हल्दी सगुन करने लगे हैं दिन,
सांझ होते आरती बनने लगे पल-छिन।

अनगाये गीत

ये कहां से आ रहे अनजान-अनगाये
नीले कुहासे में डुबोये गीत।

चुप हुई जाती हृदय की भावना
बन रही गुमसुम नवागत कल्पना,
बिन उगे मुरझा गई है प्राण की
उन्मना कातर क्षणों की चाहना,

कौन फिर धारे करुण विश्वास के साये
भेजते संवाद अनचीन्हे, अजाने मीत।

अनपढ़ा-सा लेख तेरे प्यार का
अधबना-सा चित्र मन के ज्वार का,
सुधि गगन में नखत-सा एकांत बन
बिन झकोरे सो गया स्वर तार का

क्यों विजनगंधी पवन अनुराग अनभाये
आ जगा जाता शान्त सोया नवनीत।

सांस के ऋतुराज में यह नित पला
वेदना के सिंधु में प्रतिपल धुला,
दूरवासी ओ! सिसकते गान ये
मानकर मेहमान कैसे दूं भुला,

सिहरते तममय अधर पर हास अनपाये
आ गये जब कि गई है दीपबेला बीत।

पैर की छाप

नींद में भी सुनाई पड़े
एक हंसी खिलखिलाती हुई,
कत्थई गोद के फूल-सी
गंध भीनी नहाती हुई।

आंख खुलते ही सूरज जगे
नील झीने चंदोवे तले,
एक सुकुमार टहनी जुही
लोरियों के सहारे हिले,

एक नदी घर में उगती लगे,
तोतली जिद बहाती हुई।

पैर की छाप घर में लिखी
जलकमल ज्यों गिरे डाल से,
दूधिया दांत ऐसे लगें
दो सितारे ढंके जाल से,

या हरसिंगार झरते हुए
दूर लौ झिलमिलाती हुई।

सरसों की अंकुराती देह
गीत-धुली दो मीन आंखें
नेह का बोल बोले, खुले
चिड़ियों-सी बांहों की पांखें

इस तरह लोकधुन में पगी
नींद भी गुनगुनाती हुई।

फूले हैं यहां पर बबूल

रोपे तो शीशम के पेड़ गये
फूले हैं यहां पर बबूल।

उगते ही सूरज के शोर भरी
बजती कारखाने की सीटी;
पेट छीनता नींद आंखों की
पत्थर की पांव तले मिट्टी

लोहे के सूर्य और चांद हुए
दूबधान नहीं है कबल।

दुपहर छाते धूलों के बादल
घंटी के पहले भूख की मनाही,
सड़कों पर बिछी हुई ईंटों की किरचें
बहियों में नहीं दर्ज़ होती तबाही

आग खोज़ती है हौसले नये
ज़हाज़ों के हिलते मस्तूल

और बड़ी हो गईं छायायें
दुबली रोशनियों की देह,
पथरायी प्रतीक्षा ले पुतलियां
रूई-से उड़ते हैं दुखियारे नेह,

जीने की शर्त और सांस के लिए
जीवन में मरन सौ फिज़ल।

सूर्य को प्रणाम करें

हाथ दोनों जोड़ते हुए
सूर्य को प्रणाम हम करें।

एक सूर्य लाने गए बाबा
आज तक लौटकर नहीं आये,
एक बीज लाने गये काका
पेड़ की तरह रहे अनगाये,

छोटी इच्छाएं हिलकोरते हुए
धरा को प्रणाम हम करें।

चक्कियाँ चलाती अपनी मांएं

आटा-आटा होकर रह गयीं,
जोहती रहीं कुछ उनकी आंखें
काठ के बुरादे - सी ढह गईं,

आओ, अपना पथ मोड़ते हुए
नदी को प्रणाम हम करें।

धुआं-धुआं हुए सुलगे भाई
मौसम को आग बांटते,
अपने हाथों अपने को गढ़ने
अँधेरे के गाछ काटते,

झरने की तरह पर्वत फोड़ते हुए
फल को प्रणाम हम करें।

निर्मल मिलिंद

जन्म-तिथि : 24 सितम्बर, 1944

जन्म-स्थान : ग्राम-परसौनीबैज, शिवहर, जिला-सीतामढ़ी (बिहार)

शिक्षा : बी० ए०, डिप्-इन-एड

प्रकाशित कृतियाँ : धरती से गंध उठी (सम्पादित काव्य संकलन), अधरों से झरते शिरीष (मुक्तक काव्य), पिघलइत इस्पात आ हिरदे के बाद (सम्पादित बज्जिका काव्य संकलन), समय चेतावनी नहीं देता (सहयोगी कविता संकलन), भारतीय वीरांगनाएं (ऐतिहासिक बालोपयोगी कहानियां), गितिआ (बज्जिका का प्रथम उपन्यास)

प्रकाश्य कृतियां : कत्ल का जश्न (ग़ज़ल संकलन), खोंइछे भर गुलमोहर (बज्जिका गीत संग्रह)

विशेष : विगत तीस वर्षों से आकाशवाणी के विविध केन्द्रों से रचनाएं प्रसारित।

—रांची दूरदर्शन से काव्यरूपक 'घरौंदा' प्रसारित

—दर्जनों महत्त्वपूर्ण संकलनों में रचनाएं संकलित

सम्पादन : स्टील सिटी समाचार (सा०) में मानद सलाहकार सम्पादक

आजीविका : अध्यापन

स्थायी पता : स्टील सिटी समाचार, टुइला डूंगरी, पो० गोलमुरी, जमशेदपुर-831003

संपर्क-सूत्र : बी० पी० एम० हाई स्कूल सह इंटर कॉलेज, वर्मा माइन्स, जमशेदपुर-831007

स्वउक्ति

कविता माननीय संवेगों, आवेगों एवं उद्वेगों की अभिव्यक्ति का प्राचीनतम माध्यम है। आदिकवि वाल्मीकि ने करुणा में ही कविता का उत्स पाया था। छायावादी काव्यधारा के प्रथितयशा कवि सुमित्रानन्दन पंत ने भी कहा है कि 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, निकलकर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान' अर्थात् कविता वस्तुतः करुणा की मूलधारा से ही निःसृत होती रही है। काव्यशास्त्र के विद्वान भी साहित्य के समस्त रसों का स्रोत करुणा को ही मानते हैं। करुणा ही काव्य-भाषा में प्रकारान्तर से संवेदना कहलाती है। कवि संवेदनशील प्राणी माना जाता है। संवेदनशीलता के किस कोमल क्षण में मैंने अपना पहला गीत लिखा यह तो मुझे स्मरण नहीं है किन्तु साहित्य देवता के अन्य आराधकों की तरह मैंने भी सरस्वती के चरणों पर अपना प्रथम पुष्प गीत के रूप में ही समर्पित किया था, यह मुझे आज भी अच्छी तरह याद है।

गीत हमारी परम्परागत मानसिक चेतना के विकास का द्योतक है। संस्कृत का सम्पूर्ण वाङ्मय छन्दबद्ध है। वेद की ऋचाएं गेय हैं, उपनिषद के श्लोक गेय हैं, धार्मिक अनुष्ठानों के मंत्र गेय हैं। गेयता हमारी परम्परा है। जन-जन के कंठों में बसे हुए लोकगीतों वाले इस देश में गीत विधा ही मुझे सबसे ज्यादा अपने करीब लगी। फलतः मैंने अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए इसी माध्यम को चुना। गीत लेखन क्रम में कई बार जीवन के वास्तविक धरातल पर संघर्ष के दुर्द्धर्ष टीलों से टकराकर मेरा वायवीय स्वप्नलोक विखंडित भी हुआ किन्तु मैंने गीत लिखना कभी नहीं छोड़ा। सृजनशीलता मेरी नियति बन गई। गीत-लेखन की यात्रा में मैं कब नवगीत लिखने लगा इसकी कोई विभाजक रेखा खींचकर यह बताना कि अमुक बिन्दु से मैंने नवगीत लिखना शुरू किया है, कतई संभव नहीं है। संभवतः किसी के लिए भी इस तरह की पार्थक्य रेखा खींचना संभव नहीं है क्योंकि मानवीय प्रवृत्तियों एवं प्राकृतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया अविच्छिन्न रूप से निरन्तर चलती रहती है और अनुभूतियां अपने अनुसार अभिव्यक्ति की विधाएं चुन लेती हैं।

हां, मुझे यह अच्छी तरह याद है कि जब मैं प्रतीकों के पारदर्शी प्रभाव और बिम्बों के आकर्षक शिल्प वैभव को क्षणभर ठिठककर देखने लगा था, नवगीत किशोर हो चुका था। नवगीत विधा की चपलता, शब्द-व्यंजना, संवेदना, वैचारिक विदग्धता तथा बिम्बविधान की शिल्पगत विशिष्टता ने मेरे अन्तर्मन को विमोहित कर लिया।

मैंने अपने नवगीतों में अधिकतर प्रकृति, प्रेम और परिवेश के भावबोधात्मक

चित्र प्रस्तुत किये हैं किन्तु सामाजार्थिक, राजनैतिक, मूल्यगत स्खलनों तथा अंतर्विरोधों से उत्पन्न विसंगतियों की विभिन्न स्थितियों की अभिव्यक्ति से भी मुझे कभी परहेज नहीं रहा। हालांकि मैंने अपनी अनुभूतियों और अनुभवों के सघन परिप्रेक्ष्य में ही अपने नवगीतों की रचना की है और बिना जल्दबाजी के, अनुभवों के पकने का इन्तजार किया है, फिर भी मुझे यह मानने में कतई एतराज नहीं है कि गीत के इस फार्म में अभी सर्वोत्कृष्ट लिखे जाने की गुंजाइश बाकी है, चाहे वह किसी की कलम से लिखा जाए।

इत्यलम्

—निर्मल मिलिंद

आखर विश्वास के

एक हाथ मेहंदी से सजा हुआ
दूजे में
फूल अमलतास के।

एक आंख नील गगन हुई
और दूसरी जैसे झील,
माथे पर लाल टेस बिंदी
रौशनी बिखेरे कंदील।

टांग गया है कोई यायावर
पलकों में
सपने आकाश के।

नस-नस में तैरती मछलियां
पोर-पोर गुदगुदी हुई,
गूंज रही फिर वही धुनें
वंशी की सांस से बंधी हुई।

छींट गया है कोई देवदूत
देह में
सुगंधियां तलाश के।

मन में कुछ मूंगिया भरोसे
कुछ सपने सुरधनु-से सतरंगे,
तन वसंत जैसा महमह हुआ
रग - रग में पसरती उमंगें।

दांतों के बीच झलकते झिलमिल
कुछ कच्चे
आखर विश्वास के।

भींग गया फुहियों से

गीत कोई कानों से
प्राणों तक उतरा।

ऊदे बादल सारे
इधर उधर टहले,
बिछ गये चिड़ी के
अट्ठे, नहले, दहले।

चुरा लिया मौसम ने
नैनों का कजरा।

आँख मारकर हँस दी
बिजुरी की बेटी,
स्मृतियां सोफे पर
जागी अधलेटी।

भींग गया फुहियों से
धरती का अंचरा।

उच्छवासों ने उठकर
सिर को सहलाया,
आशा ने धोखा दे
मन को बहलाया।

दर्द रहा द्वारे पर
जीवन भर ठहरा।

घनीभूत पीड़ा
आंखों से बह निकली,
मौसम समझाए
तू चुप रह री पगली।

बंद द्वार खिड़की
पर भीग गया कमरा।

मुदैया मौसम

कब बूझेगा
मन की, तन की
ओ रे निपट निगोड़े।

पछिया हवा
लगे ऐसे
ज्यों गाली बके महाजन,
और गुनगुनी
धूप की तरह
मन चाहे अपनापन।

हाय ! देह की
रोज़ एक जैसी ही रामकहानी,
सख्त अनाड़ी
जैसे कपड़े भींगे हुए निचोड़े ।

दैया, मुआं
मुदैया मौसम
रग-रग बदन टटोले,
टखने के
ऊपर चढ़कर
भरते गुदगुदी संपोले ।

घायल मन
बस रहा तड़पता
एक बूंद शबनम को,
मिला न कोई मीत
जो बिखरे तार-तार को जोड़े ।

चितकबरी सांझ

चितकबरी सांझ, पंख तीतर-बटेर के,
दूर कहीं छितराए फूल हैं कनेर के ।

धीरे से कोई प्यारी-सी बटगमनी
अल्हड़ संथालिन-सी,
हवा चली गाती,

छींट रहे फुहियों जैसे मंगल अक्षत,
बिजली की शादी में
बादल बाराती।

छेड़ रहा रह-रहकर, करता मनमानी,
आवारा मौसम बनजारिन को घेर के।

जादू कर रहा कोई जादूगर जिससे
क्षण-क्षण में अंबर का
रंग बदल जाता,
फूंक मारता कोई अंगारे में हो
कभी तो लहक उठता
और कभी धुआंता।

एक किताब मोटी-सी हाथों में लेकर,
देख रहा हो कोई सफे उलट-फेर के।

मालिक के अट्टहास दिशा-दिशा गूंजे
थर-थर-थर कांपे तन
नयना अंसुआए,
कारिन्दे भी इतने सधे हुए जालिम
खोज पकड़ रैयत को
मुश्कें कस लाए।

आसमान-पीठ किसी बंधुए मजदूर की,
चाबुक ने जख्म सभी रख दिए उकेर के।

पसर रही मदहोशी

इंगिति, मुद्रा,
कोण दृष्टि का
जादू-जादू जैसा
फिर सपने अंकुराए
फिर से शुरू हुई सरगोशी।

नल से मिली
न जाने कितने
वर्षों पर दमयन्ती,
अधजागी आंखों में
डूबी, निद्रालस वासंती।

खुशबू भरी हवा चलती है
धीरे से
रुक-रुककर
तोड़े हैं कोयल की कू-कू
अनायास खामोशी।

मन में बजे मृदंग
स्वरों की
सम्मोहिनी उड़ानें,
एक भव्य खुशनुमा कल्पना
गायें खड़ी सिरहाने।

तुमने छेड़ दिया नयनों का
तार
न जाने कैसे
एक सनसनी कांपी तन में
पसर रही मदहोशी।

शबनम नहायी सुबह

भावों को गुदगुदाती हुई
शबनम नहायी सुबह कुछ कहे।

कोने में क्षितिज
हो गया रंग कर
नारंगी, बिलकुल ललछौंह,
अंबर से एक मनचली
लड़की
आंख मार नचा रही भौंह।

कैसे कविता न लिखी जाये
मन कैसे कहने में रहे ?

मेरी खिड़की के ही
आसपास
गंध हरसिंगारों की दोने भर,
रख गयी है रात
एक पुजारिन-सी
गा कर के भजनभाव भीने स्वर।

कौन भला हो न जाए रोमांचित
जो इतने फूलों की चोट सहे ?

हंस उड़े जैसे सिन्दूर के

लाल मेघ—
हंस उड़े
जैसे सिन्दूर के,
लगा गया
छापे ज्यों
कोई इंगूर के।

तड़क गयी
बिजली क्षण में
अंतर अकुला गया,
बेकली
बढ़ी इतनी
रस्ता धुंधला गया।

आने दो जो हैं
मेहमान
बड़ी दूर के।

गहराया कालापन
वंशीवट
डूबा,
कई रंग बदल गया
मन का
मंसूबा।

फूटने लगे
लड्डू
ज्यों मोतीचूर के।

इतने कठिन हुए दिन

इतने कठिन हुए दिन
जीना जैसे हुआ मुहाल।

धू-धू करती जले हवा
औ' आरी धूप चलावे,
पिछवाड़े के बरगद नीचे
दोपहरी सुस्तावे।

ठौर-ठौर पर धरती दरकी
कहती दिल का हाल।

अधर-अधर पपड़ियां पड़ीं
और खोजे कंठ तलैया,
इतना सूखा समय कि
छांहें भी तलाशती छैंया।

क्षण में चुए पसीने
दमके जैसे मोती भाल।

सूखा सन्नाटा फैला है
हर दिशि खाली-खाली,
दिवास्वप्न-सी दीख रही है
कहीं - कहीं हरियाली।

ऋतु ऐसी लगती ज्यों
भिखमंगे की हो ससुराल।

धूप की गिलहरी

अभी तुरत दिखी
अभी शाखों में दुबक गयी
धप जैसे गिलहरी हुई।

मौसम ने बना लिये
बर्फ के घरौंदे,
मिसरी के डले पड़े
मक्खन के लोंदे।

हिमपूरित नद, झरने
जमी हुई झीलें
चांदी की तश्तरी हुई।

उड़ते हिमकण जैसे
रुई के फाहे,
बर्फानी हवा
और जोर-जुलुम ढाहे।

पेड़ पर, पहाड़ों पर
एक सफेद-सी चादर
बिछी जैसे इस्तरी हुई।

शब्दों के मोगरे पिरोना

मितवा रे
जब तेरा मन भटके
शब्दों के मोगरे पिरोना ।

उड़हुल, गुलदाउदी और गेंदा
जूही, चम्पा, गुलाब, बेले,
महकती हुई बगिया तेरी कोई
बहला - फुसला करके ले ले ।

तब भी तुम मीत !
न होना निष्ठुर
औरों के लिए न कैक्टस बोना ।

संभव है लूट ले हंसी सारी
पूरी ही बस्ती बटमारों की,
छीन ले तुम्हारी मुट्ठी का सुख
क्रूर साजिशें गुनहगारों की ।

संभव है,
भागे मन विह्वल हो
देखकर रक्त गंध-गंधिल कोना-कोना ।

गीतों का शीशमहल
पत्थर से चूर-चूर हो जाये,
तेरा हंसना - गाना
जब कसूर हो जाये ।

तब भी मत टूटना
किसी ठौर रह लेना
तुम राजा भरथरी न होना ।

चंदनी चेहरे

यही होता है कि हम जब भी खुशी में फूल जाते हैं
सही में तब हम अपनी शख्सियत को भूल जाते हैं।

कहां वे रंग-गंधों से भरे, अपनत्व से भीगे
तुम्हारे साथ गुजरे क्षण,
कहां ये कैक्टस-से दिन
और पत्थर बिछी सड़कों की तरह
बेलौस शामों का अवांछित खुरदुरापन,

कहां बिखरे हुए बालू, समंदर का किनारा
और लहरों का निमंत्रण जादुओंवाला,
सजे रंगीन बल्बों की बुनी झालर
और मक्खन-सी टपकती रोशनी
हर तरफ फैला हुआ भरपूर उजियाला,

बरबस याद आ रहे हैं चंदनी चेहरे,
मुलायम रेशमी सपने नयन में झूल जाते हैं।

न जाने लिख दिया किसने गलत है छेड़ना
सुन्दर-सलोनी-सी तितलियों को,
कुलांचें हिरन-सा भरना या कि बंसी में फंसाना
तैरती भोली मछलियों को,

मेरे आजाद नगमें, बलबलाती हसरतें
और विवश व्याकुल तन,
तड़पकर रह गये
कसते गये युगधर्म के बंधन,

जमाने के चलन हमको हिदायत यही देते हैं
भले बच्चे भरे बस्ते लिये स्कूल जाते हैं।

पांव फिर बहके

न जाने क्यों आज फिर से
एक स्पंदन अनोखा
देह में सिहरा
गमगमायी सांस
स्मृति की छुअन से
क्या हुआ जो पांव फिर बहके ।

तुम्हारा जलतरंगों की तरह से खिलखिलाना
और आंखें संकुचित कर मुसकुराना,
न जाने क्यों
याद आता आज फिर से
फ्रेम के भगवान को दीया दिखाना,
खुशनुमा यादें,
जैसे कचनार महके ।

बेसिरे की सिर्फ उलझी ऊन-सी बातें,
और इतनी तेज
चर्खी पूनियां काते,

न जाने क्यों
याद आए जा रही है
ठिठोली, अल्हड़ उमंगें, गरम गलबातें,
और सहसा चुपा जाना
कोई दिलकश बात कहके ।

आप क्या जानें

बैठकर इक्वेरियम के पास
ड्राइंग रूम में
देखते कौतुक मछलियों के।

आप क्या जानें
हवा की चुभन का एहसास
कितना सालता है,
आप क्या जानें
कि चंदा से सजा आकाश
क्या कर डालता है,

उस अकेले को जो झेले जा रहा है
विरह का दुःख
दर्द, श्रमपूरित पसलियों के।

आप तो हैं इत्र की शीशी
कि जिसकी गंध रह-रह पसरती है,
क्या करेंगे जानकर गाथा
जो आंखों की सतह पर उतरती है,

आप किस्से सुनें
भंवरों के, कमल के
या तितलियों के।

क्यों सुनाएं—हम वहीं के वहीं बैठे
आपने दूरियां तय कीं,

आप सड़कों से हवा तक पैठे
कविताएं लिखीं अरुणिम प्रणय की।

छोड़ करके जा चुके हैं आप
और हम हैं पड़े छिलके मूंगफलियों के।

अनुराग के श्लोक

तुम मिली तो भर गया मन
प्यार से, आनन्द से।

तुम मिली तो सांस से
जैसे अनोखी गंध फूटी,
तुम मिली तो कल्पनाएं
उतर आयीं जनम - रूठी

तुम मिली तो सनसनाते भाव उमड़े प्राण में,
तृप्ति मिलती ज्यों भ्रमर को
पुष्प के मकरंद से।

तुम मिली तो लगा मन में
हरापन - सा बिछ गया हो,
शब्द - शिल्पी स्वयं अपने हाथ
कविता रच गया हो,

तुम मिलीं
तो ओंठ से अनुराग के श्लोक फूटे,
फूट पड़ते बोल हैं
ज्यों बांसुरी के रंध्र से।

कौन - सी आसक्ति
मेरे प्राण - मन को घेरती है,
क्या हुआ जो देख तुमको
प्रकृति वंशी टेरती है,

क्या पता
कितने जनम, कितने युगों से हूं बंधा,
रिश्ता हमारा है वही
जो शब्द, लय का छंद से।

बालू पर रेखाएं खींचे

जरा कुनमुनाएं
हंस लें, आंखें मीचें,
आओ, फिर बालू पर रेखाएं खींचें।

अपनी ऊंचाई को दरपन में देख - देख
ऊब गया हूं मैं तो
चाह रहा मन छोटा हो जाना,
चाह रहा शीशे का ग्लास फेंक
जख्मी कर दूं मैं सन्नाटे को
चाह रहा मन यूं ही रो जाना।

फिर से दिल करता है
दौड़ लगा जाऊं मैं
रंगीली चितकबरी तितली के पीछे।

अनायास छींट दें दुधैली मुसकानें
आओ तो मिलकर बनाएं फिर
रेतों का क्षणजीवी ताजमहल,
शोर - शराबों का निकालें जुलूस हम
आओ न, गायें - चिल्लायें
मिल-जुलकर कर देवें उथल-पुथल।

देखें यूं रिश्तों की
जड़ की मजबूती
सुबहों को उखाड़ें, शामों को सींचें।

आप बहुत धीरे से बोलिए

शोर - शोर वे तो कर ही रहे,
भैया, श्रीमानजी, महाशय
आप बहुत धीरे से बोलिए।

सजी - धजी गाड़ियां
ठाठदार रहना,
ठांव - ठांव अमले
उनका क्या कहना ?
दरवाजे चोबदार बग्घी,

उधड़ी मिरजई, फटी धोती
पांव बिना पनही
आंखों में मोंती
बात - बात बंध जाती घिग्घी।

अपनी औकात तो टटोलिए!
आप बहुत धीरे से बोलिए!

हवाई उड़ानें हैं
बेशुमार इमदादें,
उनकी तो बात और
कदम - कदम पर प्यादे,
बा - अदब जनाब होशियार,
माहिर हैं फेरों के
मीत हैं लुटेरों के
गुण पाये सर्पों के
बाघ के, बघेरों के
हर जगह हजूर नमूदार;

सत्ता - धन - धर्म के बिचौलिए!
आप बहुत धीरे से बोलिए!

गीत हमारे पहरेदार हुए

आम लोग छल - छंदों के मोहरे हुए,
यंत्र - तंत्र जब तस्कर के बटखरे हुए,
जब आघात लगा
अपनी परिपाटी को
गीत हमारे पहरेदार हुए।

पाखंडों का धआं उठा
और दंगे हुए कुहासे,
भूल गये अधरों पर आना
कजरी, बारहमासे,
आग लगी जब
रम्य गुलाबी घाटी को
गीत हमारे पहरेदार हुए।

जब-जब बिके पहरुए कुर्सी बेईमान हुई,
बेकसूर ज़िन्दगी बेवजह लहूलुहान हुई,
जब - जब खतरा हुआ
मूल्यों को, माटी को
गीत हमारे पहरेदार हुए।

अहंकार जब बढ़ करके बारूद हुआ,
विश्वशांति का स्वप्न नेस्तनाबूद हुआ,
राह दिखानी पड़ी
कील औ' कांटी को
गीत हमारे पहरेदार हुए।

चारों ओर दरिंदे

बेबस झुलसे डैने जिनके
मरु में छांह तलाशें,
भूल गये उड़ना तक
हम हैं
वे ही विवश परिंदे।

स्वर्ण अतीत हमारा था
नक्षत्रों तक गतिमयता,
एक सूत्र में बांधी धरती
विश्वजयी समलयता।

दूर - दूर तक की
हरियाली
के हम थे वाशिन्दे।

हम जटायु की तरह लड़े थे
छल के दसकंधर से,
पंख कटे, पर कभी नहीं
हम टूटे थे अंदर से।

समय सदा गतिशील
नहीं रहता है संग किसी के,
युग की धार कुठार सरीखी
चारों ओर दरिंदे।

हिमालय का पिघलना

अब बहुत ज्यादा जरूरी हो गया है
इस घुटनवाली हवा का रुख बदलना।

कल तक मन भला - चंगा था
सभ्यता के नाम पर नंगे हुए,
आदमी हो गया इतना बेशरम
देवता की ओट में दंगे हुए,

शोर से भर रहे
मन का खोखलापन
ताल - गति पर अब न चलते पांव,
छींट दीं मौसम ने ऐसी चिनगियां
दीखते हर ओर जलते गांव,

सनसनी, उत्तेजना, बेचैनियां
कठिन लगता खुशबुओं के पास तक चलना।

इस तरह हिंसा यहां हावी हुई
आदमी के खून की बारिश,
एक थी बदनीयत हिन्दुस्तान की,
सियासत की फल गयी साजिश,

घेरने लगे हैं छोटे दायरे
लोग अब तो जाति - धर्मों में बंटे,
चेतना का सूर्य अस्ताचल चला
उलझनों का कोहरा कैसे छंटे ?

हाय ! अब तो किसी को भाता नहीं
नदी की खातिर हिमालय का पिघलना।

क्या पागलपन है !

रहना है बदबुओं की बस्ती में
चन्दन की गंध में नहाने का मन है,
लोग कहें क्या पागलपन है ?

राहें ऐसी मिलीं कि तलुए
कांटों से खुरदरे हुए,
लेकिन हमने न हार मानी
इसी से बहुत बुरे हुए,

सावन की बिछलन पर दौड़ चले
लहरों का जब मिला निमन्त्रण है,
लोग कहें क्या पागलपन है ?

समझौते के कागज पड़े रहे
उन पर हस्ताक्षर नहीं किये,
क्या जाने क्यों यकीन था खुद पर
अपनी ही शर्त पर जिये

सबकी ही चुभन सही चुप - चुप
ज़िन्दगी नहीं है, पिनकुशन है,
लोग कहें क्या पागलपन है ?

देखे हैं लोगों को खुश होकर सहते
चांदी के फूल कढ़े जूते,
अपनी मिट्टी है कुछ ऐसी
राक्षस के पांव नहीं छूते,

ढिठाई नहीं है आप जो कह लें
यह है संकल्प, यही प्रण है
लोग कहें क्या पागलपन है ?

जहरीला परिवेश

ओ रे निगोड़े
कभी नहीं सालते क्या तेरा मन
पश्चिम में उड़ते ये चिड़ियों के जोड़े ?

कुल मिलकर जीवन है जोड़ या घटाव
सर्पों की कुंडलियां, मगरों के दांव।
लेकिन तिनके जैसा
कुट-कुटकर काट दें
मिले जो खुशी के पल गिन-चुनकर थोड़े।

ओ रे निगोड़े
सारे सन्दर्भों से टटें,
अलग हो जायें
झूठी-सी दुनिया रच लें
उसमें खो जायें,

झुठला दें सारा यह
कैंचुआया वर्तमान
क्षण भर तो जहरीला परिवेश छोड़े।

बीत रही उमर
चार पल खुशी से जी लें,
गमक रही बगिया में
खुशबू को पी लें,

हाथ नहीं लगने को स्वर्ग की सफेदी,
बहक रहे बेलगाम मन के ये घोड़े।
ओ रे निगोड़े !

मुश्किल अंधेरे को फतह करना

मत मुकरना, युद्ध से तुम मत मुकरना।
हालांकि, मुश्किल अंधेरे को फतह करना।

कुर्सियां सारी जुड़ी जिनसे
क्या सिंहासन बत्तीसी की,
और डिस्को संस्कृति
हर ओर चाहती है रोशनी फीकी,

आधुनिकता ठहाके दे सब करम करतो
करनियों का भले दूजे को पड़े भरना।

मछलियां बेखबर
बुनते जाल, सिंधु तट पर बैठ मछुआरे,
लोकतंत्री व्यवस्था की दुहाई
दे रहे मुंहजोर हत्यारे,

चबाओ कंकड़ औ' निगलो आंकड़े
सभी टोलों से निकलता झूठ का झरना।

महामारी भूख फैले रोज ही
साजिशें हो रहीं ऐसी गिद्ध - चीलों की,
पोसते हम जा रहे हैं आज भी
सभ्यता आदिम कबीलों की,

जो जरा भी गुनगुनाते फड़फड़ाते हैं
चाहते हैं लोग उसका पर कतरना।

बनकर खासमखास

राजनीति ने
लूट लिया सब
बनकर खासमखास।

हर घर को रोशनी मिलेगी
गलियों को उजियारा,
बिखर गया सारा आश्वासन
बनकर पारा - पारा,

रखकर गिरवी
गौरव-गरिमा
क्षमता औ' विश्वास।

ऐसी हुई संधियां दुस्तर
मुश्किल हुए निवाले,
चारों ओर तने हैं साथी
बस मकड़ी के जाले,

फिर विदेश की
कंपनियां ना
दुहराये इतिहास।

बदल गया है स्वाभिमान का,
राष्ट्रधर्म का अर्थ,
जो पाखंडी जन - गण द्रोही
वे ही सर्वसमर्थ,

पड़े हाशिए
आर्यभट्ट से—
लेकर तुलसीदास।

डाकिनी यह सल्तनत मनहूस

कसमसाती चुप्पियां उछले हुए नारे
एक अर्थी, एक जनता
और एक जुलूस।

चंद टुकड़ी बात
कानाफूसियां
आलोचनाएं,
चेहरे सहमे हुए
जिज्ञासु आंखें
हर अधर पर एक स्वर
हम क्या बताएं ?

एक दहशत बंद दूकानें शहर की
ख़ून के थक्के
औ बिखरे चंद लेमनचूस।

घूमते जो सिर उठाये नाग
तोड़ देंगे लोग उनके
एक दिन विषदंत।
खुद न जाने केंचुलें
किस दिन उतारेंगे
छद्म से लिपटे हुए श्रीमंत।

क्या मनुज को मनुज रहने नहीं देगी
डाकिनी यह
सल्तनत मनहूस।

गिरें क्यों हम ही उलटे-औंधे

एक प्रश्न मन में सावन की
बिजली जैसा कौंधे,
आप अटारी चढ़ें,
गिरें क्यों हम ही उलटे-औंधे ?

पेड़ों की ममता में हमने
नीम - बबूल भी सींचे,
पानी की क्या बात
पसीना पूरी देह उलीचे,

जिन्हें बचाने में हम ने
ताउम्रतपिश झेली है
आप काटते क्यों
वे ही चंदन - अंगूरी पौधे ?

हमीं मुल्क के काम आये
हम बने तोप के गोले,
दुर्गम पथ चलने से
उभरी गांठें, फटे फफोले,

वक्त पड़ा तो
इन्कलाब भी कहा, संवारी भाषा
आप पोंछते रहे
अदब से साहब के चमरौंधे ।

सूदिया महाजन

राजा के माथे पर
खूब सजी कलगी
बिन पानी चीख रहे गांव।

झटके से देश बंटा
भीतर-बाहर से
अर्थ के अनर्थ हमले हुए,
स्वाभिमान के पुतले
हो गये, विश्व की
वित्त संस्थाओं के बंधुए।

दगाबाज बैसाखी
हमने कबूल ली
कटवाकर अपने ही पांव।

दुश्मन ने घर में जब
हांक दिए
जहरीले सांप औ' संपोले,
आंगन से अमन गया
आ धमके
लेकर जब रहजन हथगोले।

धौंस दिखा थमा गया
सूदिया महाजन
हाथों मनचाहे प्रस्ताव।

मिलते अब छलिया प्रणाम

गीतों को कौन भला पूछे
छलना का रंगा - सजा ग्राम,
चीज़ें बिकतीं नहीं सही-सही
बिकते हैं चीज़ों के नाम।

ओढ़ - पहन रहे
सब व्यथा को,
कोस रहे लोग
व्यवस्था को,
सिर झुका के
जा रहे कबूले
अभिशापित
व्यक्ति संस्था को।

चार कदम बढ़ने में भी अक्षम
टूट गया सकल इंतजाम।

बिकता वजूद
आदमी का,
बिकता है वृत्त रोशनी का,
बेच रही
विवश आंख सपने
बिकता भगवान
इस सदी का।

बदले आशीषों के अर्थ
मिलते अब छलिया प्रणाम।

शेष कुशल है

समय सुहावन, पर उदास मन,
शेष कुशल है।

बांट रही राशन हैं थोथी खबरें बस सरकारी,
गली-गली में करें दरिंदे जोर-जबर बटमारी,

गुमसुम, बेबस, 'स्वच्छ प्रशासन,'
शेष कुशल है।

हवा निगोड़ी डंक चुभोती चिथड़ी हुई रजाई,
सोने देती नहीं जरा भी दुश्चिन्ता हरजाई

देह हो गयी उजड़ा उपवन,
शेष कुशल है।

अम्मा शायद नहीं बचे इस साल दमा के मारे,
क्षय के रोगी बाबू जी दिन गिनते हैं बेचारे,

घर-दरवाजे पर उचाटपन,
शेष कुशल है।

बेटा हुआ जवान, नहीं है रोजगार पर कोई,
आज़ादी का फल टपकेगा कितनी आस संजोई,

जैसा सावन, वैसा अगहन,
शेष कुशल है।

पिछली बार बाढ़ जो आयी लायी बड़ी तबाही,
बढ़ी जा रही कर्ज सरीखी बिटिया नित अनब्याही,

रोज तगादे करे महाजन
शेष कुशल है।

चुभते सन्नाटे

किस-किस के होंठों की खातिर
गीतों के बोल नहीं बांटे !

किस-किस के
आंसू न पोंछे
किस-किस का साथ नहीं दिया,
लेकिन अपनी खातिर
पायी
ठिठुराती हवा, बहुत शुक्रिया।

किस-किस के क्षतविक्षत पांवों से
उकेरे नहीं मैंने कांटे।

किस-किस के
होंठों पर हंसी
नहीं टांकी मैंने ?
मगर सबने दिये
बेहिसाब
दर्द पैने !

क्या कहें किस तरह चुभे
अंतर में तीखे सन्नाटे ?

विश्वास का दिया

कोई लिखे या नहीं लिखे
लिख जाता हूँ अपना मर्सिया,
जो भी पढ़ दे मेरे मरने पर
उनका पहले ही से शुक्रिया।

दुःख नहीं है इसका जो दुःख मिला,
गुल के बदले खार मिले तो क्या गिला,
ज़िन्दगी में सिर नहीं मेरा झुका
एक भी कदम नहीं डिगा-हिला।

बीते बचपन-यौवन जूझते
युद्ध किये
और कुछ नहीं किया।

सब ही तो लौटे थे प्यार मेरा पाके
नेह में, पुलक में, उल्लास में नहा के,
जो भी नाराज रहे उनको
खुश करना चाहा था
गीत कुछ सुना के।

हर अंधेरे के आगे
चुपके से रख देता
विश्वास का दिया।

डॉ० मधुसूदन साहा

जन्मतिथि : 15 जुलाई, 1940

जन्मस्थान : ग्राम-धमसाई, पो० चपरी, जिला-गोड्डा (बिहार)

शिक्षा : बिहार विश्वविद्यालय से स्नातक, भागलपुर विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी), संबलपुर विश्वविद्यालय से 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उड़िया कहानी की भावभूमि' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि। अनुवाद में डिप्लोमा।

प्रकाशित कृतियां : पलकों की पंखुरी (कविता संग्रह), महुआ-महावर (सहयोगी नवगीत संकलन), एक अछूता टुकड़ा (कहानी संग्रह), सपनों का शाहजहां (उपन्यास), हिन्दी कार्यशाला संदर्भिका, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और उड़िया कहानी की सामाजिक भावभूमि (शोधग्रंथ), हवा के संग (बाल कविताएं)

सम्पादन : किंजाल्क, सात हाथ सेतु के (काव्य संकलन), खरोंच लगा हुआ कांच (कहानी-संग्रह), राष्ट्रीय चेतना के कवि : मैथिली शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद : परिप्रेक्ष्य एवं परिदृश्य (सहयोगी संपादन), संत साहित्यकार शिवपूजन सहाय (संस्मृति ग्रंथ)

अनुवाद : उड़िया की प्रतिनिधि कहानियां, शपथ संथाल की, मन के आईने में (कहानी संकलन), तृतीय नयन (उपन्यास)

विषय : उड़िया, पंजाबी, तेलुगु एवं मैथिली में रचनाएं अनूदित एवं प्रकाशित।

पुरस्कार : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष 1991-92 के लिए 'सौहार्द सम्मान' से पुरस्कृत।

सम्प्रति : राउरकेला इस्पात संयंत्र, राउरकेला में राजभाषा अधिकारी के पद पर कार्यरत।

सम्पर्क : 'मनुहार', डी-90, कोयल नगर, राउरकेला-769014 (उड़ीसा)

स्वउक्ति

मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। सृजन संकल्प उसकी सहजात वृत्ति है जो एक प्रक्रिया से गुजरती है। संवेदनशीलता उस व्यक्ति में अपेक्षाकृत और अधिक होती है जो किसी भी कला के सृजन में निरत रहता है। वह हर क्षण अनुभव और अनुभूतियों की विविध पगडंडियों से गुजरता रहता है। उसका चेतन मन इन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए माध्यम की तलाश करता है। इस तलाश-क्रम में उसके हृदय-पटल पर कई तरह के बिम्ब उभरते हैं: प्रतीक जन्म ग्रहण करते हैं और अनजाने ही गीत का सृजन हो जाता है। जब कोई अनछुआ शब्द-बिम्ब भावों की सघन सम्पृक्तता के साथ लयात्मक गीति-प्रविधि में आकार ग्रहण करता है तो नवगीत का सृजन होता है। नवगीत के सृजन के लिए नये काव्य-बिम्बों की आवश्यकता होती है। ऐसे काव्य-बिम्बों को परिभाषित करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—"सर्जना के क्षणों में अनुभूति के नाना रूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ हो जब शब्द के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते हैं तो सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस-छवियां आकार ग्रहण करने लगती हैं। इन्हें ही काव्य-बिम्ब कहते हैं।" वस्तुतः नवगीत इन्हीं समृद्ध काव्य-बिम्बों का लयात्मक मूर्तन है।

बचपन से लेकर कर्मक्षेत्र में प्रवेश तक मैंने घर और बाहर, स्वजन एवं परिजन तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता के इतने स्वरूपों को देखा-झेला है कि मेरे अनुभव का आकाश तरह-तरह की अनुभूतियों के मेघ-खंडों से समय से पहले ही आच्छादित हो गया। कर्मक्षेत्र में प्रवेश करने के बाद भी दुख, प्रताड़ना, यंत्रणा, अभाव एवं उपेक्षा की अनेक नागफनियां अन्तर्मन को छलनी करती रहीं, गहरी-तीखी खरोंचें देती रहीं। मेरी रचनाओं में जाने-अनजाने ये जीवनानुभूतियां अभिव्यक्त होती रही हैं। अपनी इस सृजन-यात्रा में मैंने कब गीत-लेखन की राह छोड़कर नवगीत की पगडंडी पकड़ ली; इसकी कोई विभाजक रेखा खींचकर यह बतलाना कतई संभव नहीं है। गीत के आकाश में नवगीत के काव्य-बिम्ब तो स्वतः मेघ-खंड की तरह उभरने लगे होंगे; इसके लिए किसी सायास उपक्रम की परिकल्पना भी मैंने की हो, ऐसा नहीं लगता। इसलिए मेरा यह मानना है कि किसी क्षण विशेष में मेरे अवचेतन मन में अवस्थित बोध ने नये दृश्य-बिम्बों का साक्षात्कार किया होगा और किसी एकान्तता की सघन अनुभूति को सहज लयात्मक रचना-प्रक्रिया में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया होगा और वही मेरा पहला नवगीत रहा होगा। मेरी उस रचना में कितना गीत और कितना नवगीत का सरोकार था, इसका ज्ञान तो उस समय हुआ जब नवगीत के प्रथम प्रस्तोता और समर्थ पक्षधर श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने मेरे इन गीतों को विश्लेषित कर

बतलाया कि ये गीत लय-संधि के पूर्वानुशासन से परे हैं और इनमें प्ररूप-भंजन की क्षमता है।

'आजकल' के जनवरी और फरवरी, 1983 के दो अंकों में प्रकाशित अपने लम्बे लेख—'नवगीत : विकास-क्रम का एक वस्तुनिष्ठ निरीक्षण' में सातवें दशक के उभरते नवगीतकार के रूप में मेरी चर्चा कर तथा 'महुआ-महावर' में प्रकाशित मेरे नवगीतों के बारे में विस्तृत विश्लेषण कर उन्होंने ही पहली बार मुझे इस बात का एहसास दिलाया कि मेरे गीतों में ब्रेकिंग ऑफ पैटर्न की सामर्थ्य है। पुरागीत-भंजन की यह पहल ही मेरे नवगीत लेखन की शुरुआत है, मनोबल के नये आवर्त्त की झलक है, तथा गंध-बिम्ब के सक्रिय और सान्द्र उदाहरण हैं। अपने नवगीत लेखन के क्रम में 'एक-एक अनब्याहे बिम्ब ने मुझसे अकेले में बातें कीं', 'नये आयामों के बेल-बूटे' उजागर हुए तथा 'नये मूल्यबोध के शहरी मुखौटे' बेनकाब हुए।

प्रकृति और संस्कृति दो ऐसे तत्त्व हैं जो नवगीत-लेखन के लिए साधन भी हैं और साध्य भी। दरअसल प्रकृति नवगीत का अविभाज्य अंग है। नवगीतों में जीवन की विविध अनुभूतियां प्रकृति के नाना बिम्बों के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती हैं क्योंकि यह काव्य-विधा अभिधा में कुछ नहीं कहती; जो कुछ कहती है व्यंजना में ही। इसी दृष्टि से यह पूर्ववर्ती गीतों से भिन्न है।

मेरे गीतों में भी प्रकृति विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है। और जहां प्रकृति के बिम्ब भावमूर्त्तन में सक्षम नहीं हो पाये हैं, वहां संस्कृति संस्कार एवं पुराबिम्बों के साथ सहज ही अवतरित हुई है क्योंकि प्रत्येक रचनात्मक कृति मूल रचनाकार के ऐकान्तिक अनुभव अथवा जीवन के एक-एक क्षण के साथ सीधे साक्षात्कार से सरोकार रखती है।

कहना न होगा, नवगीत लेखन की मेरी रचना-प्रक्रिया अत्यन्त सहज है। सुबह-शाम टहलने के लिए निकलते समय, खटाल से दूध लाते समय, दफ्तर के लिए जाते अथवा वहां से आते समय हठात् कोई पंक्ति जेहन में कौंध जाती है। बार-बार गुनगुनाते हुए वह एक अकेली पंक्ति गीत अथवा नवगीत का आकार ग्रहण करने लगती है और घर पहुंचकर एकाध घंटे में नवगीत पूरी तरह अवतरित हो जाता है। मेरे अधिकांश नवगीत इसी तरह रचित हुए हैं। कई बार रेल की लम्बी यात्रा के दौरान एकान्त क्षणों में भी गीत की पंक्तियां कौंधी हैं और खिड़की के पास गुनगुनाते-गुनगुनाते गीतों का सृजन हुआ है। मैं कम्पार्टमेंट के भीड़-भरे माहौल में भी खिड़की के किनारे बैठते ही एकान्त का बोध करने लगता हूं, घर के कुहराम-भरे वातावरण में भी मेरे गीत आकार ग्रहण कर लेते हैं। तात्पर्य है, मैं सायास कुछ नहीं लिखता।

—मधुसूदन साहा

इक कली कचनार हो तुम

नयन को
देती निमंत्रण
इक कली कचनार हो तुम।

सुबह की सोनल किरण-सी
रूप का जादू बिखेरे,
धूप में होती खड़ी जब
बांह में मकरंद घेरे,

देखकर
लगता कि जैसे
मोगरे की डार हो तुम।

देह की चिकनी सतह पर
रेशमी आंचल लहरता,
देखकर अंगड़ाइयों को
आईने का दिल सिहरता,

नियति के
हाथों सजायी
सोलहों सिंगार हो तुम।

सांझ की सिहरन सरीखी
जब कभी तुम पास आतीं,
गंध भीनी छुवन तन में
इक मधुर ज्वाला जगाती,

प्रकृति के
क्वांरे अधर की
रस-भरी मनुहार हो तुम।

फागुनी अतीत

याद बहुत आते हैं
फूलों की घाटी में
खुशबू के गीत।

मूंगे-से अधरों पर
रसवन्ती बोल,
सिन्दूरी सांसों की
धड़कन अनमोल,

आमंत्रण देते हैं
झील में नहाने को
महुआये मीत।

अमराई में लेटी
अमिया की छांह,
चंदन-सी नरम-नरम
मौसम की बांह,

आज भी बुलाते हैं
टेसू वन से मुझको
फागुनी अतीत।

वंशी के रंध्रों से
प्रीत की पुकार,
नैनों से बरस रही
स्नेह की फुहार,

प्राण गुदगुदाते हैं
पिछले संदर्भों के
मादक संगीत।

उमरिया की रोटी

आंगन का सन्नाटा
काटे चिकोटी।

देहरी पर चढ़ते ही
आंचरा सरके,
पाहुन की आहट पर
कान खड़े घर के,

यादें देती हैं बार-बार दस्तक,
अनजानी खुशियों से
कांप रही बोटी।

तुरत-तुरत जूड़े का
फूल फिसल जाये,
महुए की गंध मदिर
गुदगुदी लगाये,

खनक-खनक चौंकाएं कांच की चूड़ियां,
बैरिन-सी मुंह चिढ़ाये
जहरीली चोटी।

सुबह सास-सी नित दिन
मार जाये ताने,
सांझ ननद-सी नटखट
छेड़े अनजाने,

फागुन का देवर नित कर मनमानी,
काट-काट खाये
उमरिया की रोटी।

कब तलक तुम

कब तलक तुम
बर्फ-सी लेटी रहोगी
चांदनी की छांव में,
साज छेड़ो
स्नेह की हलकी छुवन से
धमनियों में आंच सुलगे।

निकल जायेंगी
अगर घड़ियां सुहानी,
गंध भीनी रात
कि रौनक - रवानी,
एक लम्हा
और गजरेगी जवानी,

चेहरे से
रेशमी घूंघट हटाओ
देखकर अब कांच सुलगे।

तुम हमारे
स्वप्न में यों उतर आयी,
झील पर ज्यों
चांदनी हो मुसकुरायी,
सांस के हर
रंध्र में जही समायी,

जिस्म के ये
पृष्ठ कितने भाव-भीने
रक्त इनको बांच सुलगे।

किरणों की सोन नदी

किरणों की सोन नदी
आंगन में पसर गई
महक उठी निमिया की डार।

पूरब के माथे पर
लाल टेस बिन्दी-सा
चमक उठा ललछौंहा भोर,
धूप की किशोरी की
उजली मुसकानों-सा
बिखर गया सोनल इंजोर,

सांसों की हर धड़कन
पाखी बन पिहक उठी
विहंस उठीं कलियां कचनार।

दूर कहीं घाटी में
नावों के चप्पू पर
थिरक रहा मछुआरा गीत,
अंतस में अनजाने
सिंदूरी यादों का
मचल उठा फागुनी अतीत,

तलहत्थी पर फिर से
मौसम ने लिख डाला
चटक रंग मेहंदी से प्यार।

मौसम मनुहार के

लौटे दिन
आज फिर फहार के।

झूले पर
चलो साथ झूलेंगे,
बूंदों को
हाथ से छू लेंगे,

आये फिर
मौसम मनुहार के।

हरियाली
भर लेंगे बांहों में,
झूमेंगे
मस्ती से राहों में,

बांहों में
बांह को पसार के।

पुरवाई
सिहरन भर जाती है,
पत्तों से
रह-रह बतियाती है,

दिन आये
गलबांही प्यार के।

सीढ़ी पर बैठी सांझ

पानी में पांव डाल
सीढ़ी पर
बैठी है सांझ।

महावरी एड़ी की घुलती है लाली
नाच रही परियों-सी लहरें मतलाली
बंसवट में बजती है पत्तों की ताली,

मादल के संग-संग
रुनझुन कर
गूंज रही झांझ।

पसर गयी क्षितिजों पर किरणें अहिवाती,
चौरे पर धर आयी गोरी संझबाती,
नैनों में कौध गई सुधियां मधुमाती,

बेला है गहनाई
पलकों में
काजल को आंज।

पश्चिम में शुरू हुई ऐसी परिपाटी,
अम्बर से अवनी तक एक हुई घाटी,
चंदन-सी चित्र लिखी लगती है माटी,

गमक उठी दिशा-दिशा
अंगों में
मलयानिल मांज।

दुपहर की धूप

पसर गई आंगन में
दुपहर की धूप।

अम्बर प्रत्यंचा पर
चढ़ा अगिन - बान
सोन-हिरण का हर क्षण
करता संधान,

धरती ने धारण कर
लिया नया रूप।

बंसवट में बजा रहा
सीटी है कौन,
पोखर है पांक हुआ
नदी हुई पौन।

सूख गया पुरखों-सा
आंगन का कप।

हवा रेत बांट रही
भर - भर चंगेर,
गौरैया झांक रही
चढ़कर मुंडेर,

पात - पात प्रजा बने
जेठ बना भूप।

परदेशी दिन

लौटा परदेशी दिन
चार पहर ठहर पुनः
सैनिक - सा लाम पर।

पौ फटते आया था
शहरी सौगात ले,
अंजुरी में दहशत भर
दिल में आघात ले,

उतरी जब शाम सघन
चुपके से कर्मठ दिन
लौट गया काम पर।

घर - घर से मिल आया
गली - गली घूमकर,
बगिया को महकाया
कलियों को चूमकर,

लौट गया पाहुन दिन
'तुरत तार' आया जब
सूरज के नाम पर।

जब तक वह रहा यहां
फूल खिला प्यार का,
पिछवाड़े महक उठा
कण - कण कचनार का,

बेच गया मखमल - सी
किरणों का थान, महज
कौड़ी के दाम पर।

ऋषियों का देश

सुबह बांचे मंत्र
संध्या ऋचाएं,
ऋषियों का देश चलो देख आएं।

रोज जहां बहती है हवा चंदनी
माटी में विहंस रही चन्द्र की कनी

पक्षी उचारते
श्लोक संहिताएं,
ऋषियों का देश चलो देख आएं।

जहां जमुन काया में गंगा-सा मन,
अंजुरी भर शब्दों का सहज आचमन

गांवों में घूमती
चपल अप्सराएं,
ऋषियों का देश चलो देख आएं।

रोज जहां लीप जाए धूप देहरी,
आंगन-घर दर्पण हो, रूप देहरी,

अगवानी करे रोज
संदली दिशाएं,
ऋषियों का देश चलो देख आएं।

धूप लड़ती छांव से

अब न आती
खबर-पाती
भूल से भी गांव से।

जब तलक थे
खाट पर सोये पिताजी,
याद कर के
रोज दिन रोये पिताजी,

अब न जाने
किस बहाने
घूप लड़ती छांव से ?

खड़ी होगी
आज भी आंखें पसारे,
याद मां की
द्वार पर ममता संवारे,

देहरी पर
दीप धर कर
बेखबर हर दांव से।

आज भी तो
मेड़ पर बरगद पुराना,
पाखियों का
छेड़ता होगा तराना,

नदी बढ़कर
रौंदती
होगी सिवाने पांव से।

संगाती गांव के

याद बहुत आते हैं
संगाती गांव के।

आज यहां जीते हैं
वहशी कोलाहल में,
रोज दंश सहते हैं
जहरीले मरुथल में,

टीस रहे कांटे हैं
बरसों से पांव के।

बार-बार कौंध रहे
हेम-हंसी के टुकड़े,
पोखर के पानी में
धुले हुए-से मुखड़े,

मौके में रहते थे
छेड़-छाड़ दांव के।

कंधे पर पड़े हुए
पुरखों के अंगोछे,
अपनी गंदगियों को
जिसमें मैंने पोंछे।

पास बैठ वर्षों तक
निमिया की छांव के।

शहरी सौगात

बाहर नहीं निकलना बेटा
घर से रात - बिरात ।

सुना शहर में दंगे होते
करते सब तकरार,
दूर शहर से आकर नित दिन
कह जाता अखबार

सोच - समझकर चलना बेटा
मत करना उत्पात ।

कभी जहर हो हवा विचरती
कभी आग ही आग,
सड़कों पर आतंक घूमता
मचता भागमभाग,

कभी उलझना नहीं किसी से
लड़ना मत बेबात ।

सोती नहीं शहर की रातें
लेतीं नहीं विराम,
मिलती नहीं सुबह रसभीनी
थपकी देती शाम,

बात - बात पर घायल होती
अन्तर की जज्बात ।

जाता है तू गांव ओढ़कर
रखना इसे संभाल,
वहां कसाई के हाथों मत
करना इसे हलाल,

अपने साथ न लाना कोई
तू शहरी सौगात।

ढह रहे ऊंचे कंगूर

ढह रहे ऊंचे कंगूरे
उठ रही दीवार
शहर का होने लगा है बेतरह विस्तार।

आजकल पूजाघरों का
है अजब व्यवहार,
शोर में गुम हो गये हैं
श्लोक - मंत्रोच्चार,

खून में डूबे हुए हैं
इस शहर के लोग,
भूल बैठे हैं अचानक पर्व औ' त्योहार।

मोड़ पर जख्मी खड़े हैं
रक्त - रंजित पेड़,
भागते उस ओर ही हैं
आदमी बन भेड़,

शाम के पहले पखेरू
नीड़ में हो बंद,
झांकते हैं मौन साधे धुंध के उस पार।

चेहरों पर हैं खरोंचें
मुट्ठियों में जोश,
किसी को अपने किये का
है कहां अफसोस !

पत्थरों के इस नगर में
जोखिमों के बीच,
बंद शीशों के घरों में तप रहे कचनार।

आदमी हो गया है मंडी

कभी महंगाई
तो कभी मंदी
आदमी हो गया है मंडी।

जिस किसी की
टेंट में
पड़े बेशुमार पैसे,
वे आजकल
कर रहे
खरीद-फरोख्त ऐसे,

जैसे आदमी
अब हो गया हो
बस राई, सरसों या अंडी।

हर किसी के
जिस्म से
काढ़ ली गई है रीढ़,
आदमी इस
दौर में
बन गया है महज भीड़,

चाहे संसद हो
या सभा-मंच
आदमी लगता है शिखण्डी ।

इस शहर को

इस शहर को
यह अचानक
क्या हुआ है आजकल ?

चांदनी से मुंह चुराकर
सड़क है नारे लगाती,
आदमी के पास आकर
मौत हर पल मुंह चिढ़ाती,

नींद को क्यों
नागफनियों
ने छुआ है आजकल ।

हर गली में आंधियों के
सनसनाते सिलसिले हैं,
पेड़ भी इस दौर के
षड्यंत्र में शायद मिले हैं,

नुक्कड़ों पर
रोज़ उठता
क्यों धुआं है आजकल ?

हर किसी का सोच इतना
हो गया क्यों सिरफिरा है,
खुद लगाकर आग घर में
आदमी उसमें घिरा है,

खोदता वह
राह में क्यों
खुद कुआं है आजकल ?

कहां जा रहे हैं

कहां जा रहे हैं इस तरह बेतहासा
आज ये उफनते हुए लोग ?

बन्द हो गया है
तटबन्धों को छूकर
स्नेह-सिक्त नदियों का बहना,
तितलियों के संग
फूलों की बस्ती में
सुगंधों के मानिन्द रहना,

किस मुहिम पर चले जुलूस की सूरत में
भाले - से तनते हुए लोग ?

सूख गया शायद
अब सब की आंखों का
प्यार भरा डहकता गुलमुहर,
हवाओं के संग
घुस आया ज़ेहन में
नफरत का नागदंशी ज़हर,

कौन जाने कहां जाकर अब ठहरेंगे
ये मशीन बनते हुए लोग ?

जो रास्ते सीधे
अंधेरे से होकर
आंधियों की ओर जाते हैं,
आजकल आदमी
जानकर अपना पांव
उसी ओर क्यों बढ़ाते हैं ?

कहां जा रहे हैं तिलस्मी सुरंगों से
शोणित में सनते हुए लोग ?

मैं शहर में आ गया दर्पण लिये

एक गलती हो गयी मुझसे पुनः,
मैं शहर में आ गया 'दर्पण' लिये।

फूल की बातें
मलय-सौगात ले,
पंख तितली के,
हृदय जलजात ले,

एक गलती कर गया फिर से मगर,
मैं शहर में आ गया 'दर्शन' लिये।

मूल्य के दर पर
सभी नंगे हुए,
बात करने के
कबल दंगे हुए,

एक गलती और फिर मुझसे हुई,
मैं शहर में आ गया 'मधुवन' लिये।

कट गये जंगल
नदी रेती हुई,
नष्ट चिन्तन की
सकल खेती हुई,

एक गलती और फिर से कर गया
मैं शहर में आ गया 'नंदन' लिये।

रास्ते सारे पड़े हैं जाम

दूर तक
लम्बी कतारें आदमी की,
रास्ते सारे पड़े हैं जाम।

हर तरफ हैं
भागते-से लोग दिखते,
मंडियों में
कौड़ियों के मोल बिकते,

कल भले
होंगे महल में खास, लेकिन
आज का हर शख्स लगता आम।

सीढ़ियों से
भीड़ सागर-सी उतरती,
मोड़ पर आ
एक पल में है बिखरती,

किसी को
मुड़कर किसी को देखने का
है कहां इस दौर में विश्राम ?

पीठ पर है
महाजन की गांठ औंधी,
पसलियों में
दर्द, आंखों में रतौंधी,

हर जगह
संभावनाएं बांझ बैठीं
किस तरह सम्पन्न होंगे काम ?

मेरे साथ चल

हर कदम पर, साथ मिलकर
है अगर रहना
तो मेरे साथ चल।

आजकल हर मोड़ के
पत्थर नुकीले हो गये,
राह में हैं कांच के
टुकड़े पड़ोसी बो गये!

हर चुभन को, हर अगन को
है अगर सहना
तो मेरे साथ चल।

कुर्सियों ने खाइयां
खोदीं शहर में हर जगह,
बह रहा है लहू बन
पानी नहर में हर जगह।

सब सहन कर, दुख पहनकर
आज है रहना
तो मेरे साथ चल।

सूखकर नदियां सभी
रेती हुई हैं आजकल,
सोच सबकी जहर की
खेती हुई हैं आजकल!

है संभलकर, विष निगलकर
धार में बहना
तो मेरे साथ चल।

हमको भी आता है

हमको भी आता है
चट्टानें तोड़कर
लक्ष्य तक पहुंचना।

झरनों ने सिखलाया
शिखरों को पार कर समतल तक जाना,
सागर से समुद्र में
खुशियों के चमकदार मोती भर लाना,

हमको भी आता है
क्षितिजों की पीठ पर
बैठकर चहकना।

मुश्किल इस घर में भी
दीवारें लांघकर आंगन तक आती,
औचक ही नींद तोड़
सिरहाने बैठकर घंटों बतियाती,

उससे ही सीखा है
कांटों की डाल पर
फूल-सा महकना।

हमने व्यवधानों की
बाड़ों को तोड़कर दर्द को मनाया,
कैक्टस के जंगल को
फरसे से छांटकर रास्ता बनाया,

हमको भी आता है
दुश्मन के सीने पर
आग-सा दहकना।

नींद नहीं आंखों में आयी

जिस दिन मां ने
बेटी को साड़ी पहनायी,
उस दिन से ही
नींद नहीं आंखों में आयी।

मोड़-मोड़ पर
नागफनी ने फन फैलाये,
गली-गली से
खतरों के संदेशे आये,

जिस दिन घर को
लगी घूरने नजर परायी,
उस दिन से ही
नींद नहीं आंखों में आयी।

परदे लगने
लगे अचानक ज्यादा झीने,
सदियों जैसे
मुझको लगने लगे महीने,

जिस दिन दरपन
देख स्वयं बेटी शरमाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आंखों में आयी।

रोज तगादा
करता आकर वक्त-महाजन,
कैसे काटें
भरी दुपहरी, सूखा सावन,

जिस दिन मेरे
कानों में गूंजी शहनाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आंखों में आयी।

मैं भी साथ चलूंगा

मैं भी साथ चलूंगा साथी
सीमा के उस पार तक।

पथ पर तुम क्यों चलते अकेले
दुपहर को इस गांव से,
क्या अनबन हो गयी अचानक
गुलमोहर की छांव से,

मैं भी साथ चलूंगा साथी
कदम मिला कचनार तक।

माना सब कुछ इस नगरी का
लगता बड़ा उदास है,
जाने तहखाने में कब से
बंदी पड़ा उजास है,

मैं भी साथ चलूंगा साथी
बंदीगृह के द्वार तक।

आगे नदी बड़ी गहरी है
पानी चढ़ा उठान पर,
कोई नहीं सुरक्षित लगता
चाहे चढ़े मचान पर

मैं भी साथ चलूंगा साथी
सांसों के पतवार तक।

मेरे गीतों को

मेरे इन गीतों को कोई
अपने स्वर से तो दुहराये।

जाने कब से यही चाह ले
जंगल-जंगल घूमा करता,
तपती दोपहरी में चलकर
लू-लपटों को चूमा करता,

मेरे इन भावों को कोई
अपनी पलकों से सहलाये।

मैंने अपने शब्द-शब्द को
सच्चाई का पाठ पढ़ाया,
अक्षर-अक्षर को चुन-चुनकर
तप्त लौह पर शान चढ़ाया,

मेरे इन शब्दों को कोई
अपनी अधरों से छू जाये।

मेरे भीतर बड़ी तपिश है
उल्का-सा कुछ टूट रहा है,
कोई बड़ा धमाका हर पल
दिल के भीतर छूट रहा है,

मेरे इन जलते छन्दों को
कोई क्षणभर तो दुलराये।

जिस दिन से तुम हुए हिमालय

जिस दिन से तुम हुए हिमालय,
मुझको अपना कद
बिलकुल ही बौना लगता।

मैं भी माप रहा था बढ़कर
सागर की अंधी गहराई,
पाट रहा था एक-एक कर
जीवन की हर अनगढ़ खाई,

जिस दिन से परवाज हुए तुम,
मुझको अपना नभ
पहले से पौना लगता।

किसकी नजर लगी बगिया को
झुलस गयी फूलों की डाली,
पत्ते पीत हुए पेड़ों के
कुम्हलायी किसलय की लाली,

जिस दिन से मधुमास हुए तुम,
मेरे माथे से
मिट गया दिठौना लगता।

तुम अपनी मर्जी से मुझको
जब चाहो जैसे बहलाते,
खुशियों की थाली में ढंककर
नफरत के कांटे दे जाते,

जिस दिन से तुम हुए नियन्ता,
सांसों का हर क्षण
अब महज खिलौना लगता।

कब तक सहें ?

दंश नफरत का नुकीला
और हम कब तक सहें ?

वक्त पड़ने पर हमेशा
लोग जंगल ओढ़ लेते,
स्नेह-सौरभ के बहाने
खाज-खुजली-कोढ़ देते,

दर्द का दुर्द्धर्ष टीला
और हम कब तक सहें ?

दूसरों के वास्ते ही
हम सलीबों पर चढ़े हैं
रौंदकर लाशें हमारी
काफिले आगे बढ़े हैं,

चक्षु हर क्षण ले पनीला
और हम कब तक सहें ?

नोंच लेते लोग पल में
तितलियों-से पंख मेरे,
जिस तरह चाहें, बजाते
धमनियों के शंख मेरे,

रोज होता कंठ नीला,
और हम कब तक सहें ?

मौके पर डंसते हैं

लोग यहां मकसद से
हेम हंसी हंसते हैं।

काम निकल जाता जब
अनजाने बन जाते,
गांठ खोल झटके से
कमची-से तन जाते,

नाग बने घम रहे
मौके पर डंसते हैं।

अधरों से अमृत की
धार बहा करती है,
सांसों में खुशबू की
रागिनी विचरती है,

चाहत की बांहों में
अजगर-सा गंसते हैं।

ऊपर से जो जितने
चिकने तन वाले हैं,
भीतर से वे उतने
काले मन वाले हैं,

कहां जाएं, सभी जगह
यही लोग बसते हैं।

बुन देते मकड़जाल
दिल के तहखाने में
सफल नहीं हो पाते
बाहर आ पाने में,

औचक ही नफरत की
दलदल में धंसते हैं।

शब्द अगर तन जाये

शब्दों को मत समझो
भाव का घरौंदा है।

इसके हर तेवर को
जिसने पहचाना है,
उसको इतिहासों के
पृष्ठों ने माना है,

मूल्यों में मत आंको
शब्द नहीं सौदा है।

शब्द अगर तन जाये
किसका क्या चलता है,
युग का हर अंग-अंग
धू-धू कर जलता है,

इसने फन तक्षक का
पैरों से रौंदा है

हर अक्षर के भीतर
सूर्य का उजाला है,
अर्थों में छिपा हुआ
उल्का की ज्वाला है,

लिखा गया कल का नित
इसी में मसौदा है।

चुभते हैं पिन

मुश्किल है रह पाना
कांटों की बस्ती में,
चुभते हैं पिन।

आस-पास फैली है
रेत मिली धूल,
सड़कों पर उग आये
बांस औ' बबूल,

मुश्किल है सह पाना
इतनी खरोंचों से
भरे शेष दिन।

लोग-बाग लगते हैं
जंगल के प्रेत,
भांजते हवाओं में
बातों के बेंत,

मुश्किल है कह पाना
बख्शेंगे कब तक ये
नफरत के जिन ।

जाने कब टूटेंगे
बाड़ों के बंद,
दूर-दूर फैलेंगे
स्नेहिल मकरंद,

मुश्किल है बतलाना
कल के नक्षत्रों को
अंगुली पर गिन ।

आज का आदमी

आज आदमी बात-बात पर
ढहाता रोज कहर ।

कहीं नदी में नहीं तैरती
मन की सोन तरी,
जल के ऊपर तैर रही है
मछली मरी - मरी,

चारों ओर मौत मंडराती
पीते लोग ज़हर ।

हवा चीखती, पेड़ झुलसते
होता चीरहरण,
सत्ता के सूरज का पड़ता
जिस क्षण क्रूर चरण,

गली-गली में आग बरसती
जलती है दुपहर।

टिका हुआ है हर मछली पर
मछुआरे का मन
सन्नाटे में कांप रहा है
लहरों का आनन,

कैसी भूख जगी लोगों में
भरता नहीं उदर।

•

मधुसूदन साहा

निर्मल मिलिंद

शान्ति सुमन